अग्निशिखा एवम् पुरोधा

अखिल भारतीय पत्रिका

जून २०२४

नूतन सर्जन

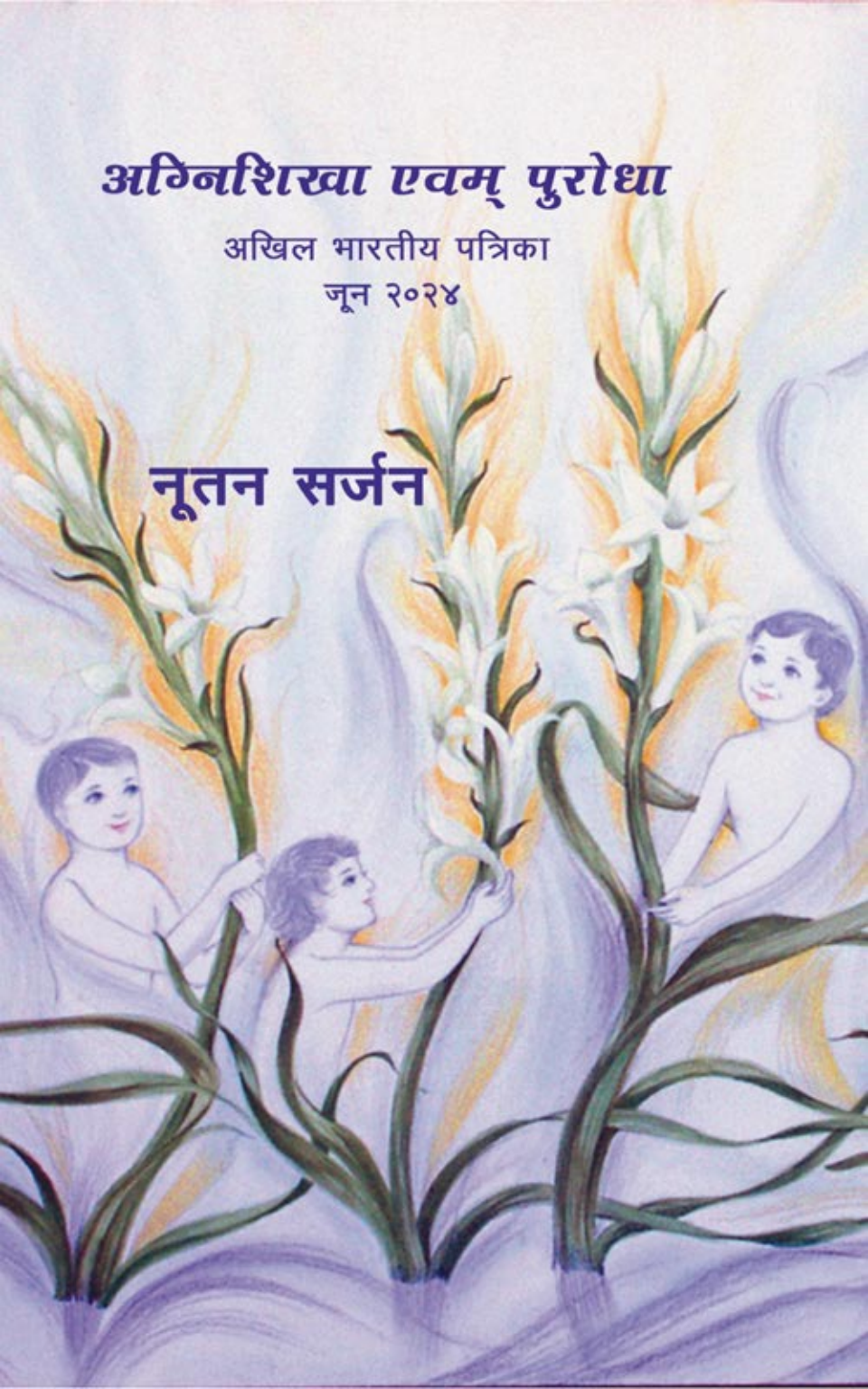

विषय-सूची

नूतन सर्जन

(श्रीमाँ के वचन)

प्रार्थना/सम्पादकीय	३
अतिमानसिक शक्ति की क्रिया	५
महान् परिवर्तन	१५
नयी जाति की झलकें	२३
मानवता तथा नूतन सर्जन	२९

पुरोधा

दैनन्दिनी		३७
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन': नारियों के लिए सलाह	नवजातजी	४०
शाश्वत ज्योति (५)	चित्रा सेन (अनु. वीणा)	४२
लादे-लादे नहीं फिरते	वन्दना	४५
झुंझुनू की सूचना		५०

क्षमा-याचना—एक बार फिर हम क्षमा के प्रार्थी हैं—अप्रैल २०२४ के मुखपृष्ठ पर मार्च २०२४ छप गया था और मई २०२४ की विषय-सूची में 'वर्तमान' शीर्षक-तले पृ. १४ आ गया है, जब कि उस पृष्ठ पर कोई शीर्षक है ही नहीं!! होना चाहिये—'भविष्य' शीर्षक-तले पृ. २९ 'प्रलय' के अंक में इतनी प्रलयंकरी भूल!!! —सम्पादिका

पाठकों को हम यह याद दिला दें कि वैसे पुराने कलेवर की 'अग्निशिखा' का यह हमारा ५४वाँ वर्ष चल रहा है।

प्रार्थना

१ अप्रैल १९१४

मुझे लगता है कि हम तेरे मन्दिर के गर्भगृह के हृदय में जा पहुँचे हैं और तेरी ही इच्छा के बारे में अभिज्ञ हो गये हैं। मेरे अन्दर एक महान् आनन्द, एक गहरी शान्ति का शासन है। मेरी सारी आन्तरिक रचनाएँ एक व्यर्थ स्वप्न की तरह ग़ायब हो गयी हैं और अब मैं अपने-आपको तेरी विशालता के आगे किसी चौखटे या पद्धति के बिना, एक सत्ता के रूप में पाती हूँ जिसका अभी व्यष्टीकरण नहीं हुआ है। अपने बाहरी रूप में सारा अतीत मुझे हास्यास्पद रूप से मनमाना दीखता है, फिर भी मैं जानती हूँ कि अपने समय में वह उपयोगी था।

लेकिन अब सब कुछ बदल गया है : एक नयी स्थिति शुरू हो गयी है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. ७०

सम्पादकीय : प्रलय के बाद 'नूतन जीवन' का पुनरुत्थान होता है। शीत ऋतु में पुराने पत्तों के झड़ जाने के बाद बसन्त हमारी प्रतीक्षा में रहता है। विनाश 'नूतन सर्जन' को तैयार करता है। यही है हमारे इस अंक की विषय-वस्तु।

हम विश्व के अस्तित्व के एक ऐसे विशेष रूप से अनुकूल काल में हैं जब पृथ्वी की प्रत्येक वस्तु एक नयी सृष्टि, अथवा यह कहें कि शाश्वत सृष्टि में एक नयी अभिव्यक्ति के लिए तैयारी कर रही है।

श्रीमाँ

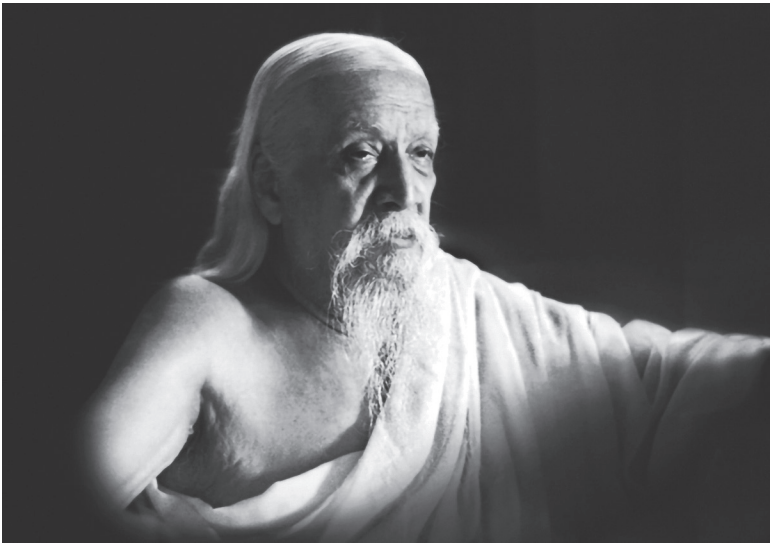

एक परमानन्द, एक परमा ज्योति, एक पराशक्ति, दिव्यप्रेम की शुभ्र शिखा ने
सकल को एक अद्वितीय विशाल आलिंगन में बाँध लिया;
अस्तित्व ने अपना सत्य परमैकत्व के वक्ष पर प्राप्त कर लिया
और प्रत्येक व्यष्टिसत्ता अब समष्टि की आत्मा और आकाश बन गयी।

ये महान् जग-सुर-ताल सब एक ही परमात्मा के हृदय की धड़कनें थीं,
यह अनुभूति प्रभु के अनुसन्धान की ज्योतिशिखा थी,
सकल मानस एक ही वीणा के अनेक तार थे,
सकल प्राण अनेक सम्मिलित जीवनों का एक गीत था;
क्योंकि जगत् अनेक थे, किन्तु उनकी आत्मा एक थी।

यह ज्ञान अब एक ब्रह्माण्डीय बीज-मन्त्र बन गया :
इस बीज को पराज्योति के सुरक्षित खोल में रख दिया,
इसे अब अविद्या के आवरण की आवश्यकता नहीं रही।

तब उस घोर आलिंगन की गहन समाधि में से
और उस एकाकी महाप्राण हृदय-स्पन्दनों से
और आवरणहीन शून्य विश्वात्मा की विजय से
एक नूतन और अद्‌भुत सृष्टि उदित हो उठी।

सावित्री, पृ. ३२२-२३ **श्रीअरविन्द**

अतिमानसिक शक्ति की क्रिया

वातावरण का गुण

वातावरण का गुण-धर्म ही बदल गया है।

परिणाम निश्चय ही अनन्त रूप से विविध होंगे, पर होंगे सुस्पष्ट। कहने का तात्पर्य, सामान्य क्रियाओं के परिणामों तथा अतिमानसिक कार्य के परिणामों में भेद करना सम्भव होगा, क्योंकि अतिमानस के परिणामों का एक विशिष्ट स्वरूप होगा, एक असाधारण विशेषता होगी।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई भी व्यक्ति, किसी भी मुहूर्त और चाहे जिस तरीक़े से, अकस्मात् अतिमानसिक महामानव बन जायेगा। ऐसी आशा नहीं करनी चाहिये।

*

"नवीन वस्तुएँ" इसलिए नहीं हैं कि वे पहले नहीं थीं, बल्कि इस अर्थ में कि वे विश्व में अभिव्यक्त नहीं थीं। स्पष्ट ही, यदि ये चीज़ें पहले से ही वहाँ अन्तर्निहित न होतीं तो वे कभी न प्रकट हो सकतीं! कोई ऐसी वस्तु अस्तित्व में नहीं आ सकती जो पहले से ही परात्पर भगवान् के अन्दर शाश्वत काल से विद्यमान न हो, पर अभिव्यक्ति में वह नयी है। वह तत्त्व नया नहीं है बल्कि नये रूप में प्रकट हुआ है, वह 'अनभिव्यक्त' के अन्दर से नये रूप में प्रकट हुआ है। नवीन का क्या अर्थ है? 'नवीन वस्तु' का कोई अर्थ नहीं है! यह *हमारे लिए* 'अभिव्यक्ति' के अन्दर नया है, बस इतना ही।" **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ८, पृ. २१४, ३७६-७७

प्रकृति के नियमों का परिवर्तन

मैंने जो कुछ तुमसे अभी कहा है उसमें सम्भवतः कुछ व्यावहारिक शब्द मैं जोड़ सकती हूँ; यह केवल एक ब्योरे का दृष्टान्त है, पर यह दूसरे प्रश्नों का एक अप्रत्यक्ष उत्तर होगा जो कुछ दिन पहले 'प्रकृति' के तथाकथित नियमों के विषय में कार्यों और कारणों, भौतिक क्षेत्र में "अनिवार्य" परिणामों तथा अधिक विशेष रूप से स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से पूछे गये थे; उदाहरणार्थ, यह पूछा गया था कि यदि कोई अमुक सावधानियों को न बरते, यदि कोई उस ढंग से न खाये जैसे उसे खाना चाहिये, कुछ नियमों

का पालन न करे तो अवश्यमेव उसके परिणाम होंगे।

यह सच है। परन्तु इसे यदि उस बात के प्रकाश में देखा जाये जिसे मैंने अभी-अभी कहा है, कि कोई दो वैश्व सञ्चय ऐसे नहीं हैं जो एकसमान हों तो भला नियम कैसे स्थापित किये जा सकते हैं और इन नियमों का ऐकान्तिक सत्य क्या है? ऐसा कोई सत्य नहीं है।

कारण, यदि तुम तार्किक हो, निस्सन्देह थोड़े उच्चतर स्तर के तर्क के साथ, तो जब कोई दो वस्तुएँ, दो सञ्चय, दो वैश्व अभिव्यक्तियाँ कभी एक जैसी नहीं होतीं, तो कोई वस्तु अपने-आपको कैसे दोहरा सकती है? ऐसा केवल एक बाह्य रूप हो सकता है पर यह कोई तथ्य नहीं हो सकता। और इस ढंग से कठोर नियम निश्चित करना—यह नहीं कि ऊपर से दिखने वाले नियमों से तुम अपने-आपको विच्छिन्न कर लेते हो, क्योंकि मन बहुत-से नियम बनाता है, और वस्तुओं का ऊपरी भाग, बहुत नम्रतापूर्वक, इन नियमों का पालन करता हुआ प्रतीत होता है, परन्तु यह केवल एक बाहरी रूप है—पर जो हो, वह 'आत्मा' की सृजनात्मिका 'शक्ति'—'भगवत्कृपा' की सच्ची शक्ति से तुम्हें अलग कर देता है, क्योंकि तुम समझ सकते हो कि यदि तुम अपनी अभीप्सा या अपने मनोभाव के द्वारा एक उच्चतर तत्त्व को, एक नवीन तत्त्व को—जिसे हम अब एक अतिमानसिक तत्त्व कह सकते हैं—वर्तमान सञ्चयों में समाविष्ट करो तो तुम हठात् उसके स्वभाव को बदल सकते हो और ये सभी तथाकथित आवश्यक और अपरिहार्य नियम असंगत चीज़ें बन जाते हैं। कहने का मतलब कि तुम स्वयं, अपनी परिकल्पना के द्वारा, अपने मनोभाव तथा किन्हीं कथित सिद्धान्तों की स्वीकृति के द्वारा, चमत्कार की सम्भावना का द्वार बन्द कर देते हो—वे उस समय चमत्कार नहीं रह जाते जब तुम जानते हो कि वे कैसे घटित होते हैं, पर स्पष्ट ही, बाहरी चेतना के लिए वे अलौकिक प्रतीत होते हैं। और स्वयं तुम ही देखने में बिलकुल युक्तिसंगत तर्क के साथ अपने-आपको यह कह कर कि: "हाँ, यदि मैं इसे करूँ तो यह अवश्य होगा, अथवा यदि मैं इसे नहीं करता तो यह दूसरी चीज़ होगी", सचमुच तुम स्वयं ही दरवाज़े को बन्द कर देते हो—यह बात वैसी ही है जैसे तुम स्वयं अपने तथा 'कृपाशक्ति' के अबाध कार्य के बीच एक लोहे की दीवार खड़ी कर दो।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ३७७-७९

कितना सुन्दर होगा यह कल्पना करना कि 'परात्पर चेतना', जो मूलतः स्वतन्त्र है, वैश्व 'अभिव्यक्ति' के ऊपर अधिष्ठान करती है, अपने चुनाव में मनमौजी हो सकती है और मानव-विचार के लिए सुलभ किसी न्याय के अनुसार नहीं बल्कि किसी दूसरे प्रकार के, अदृष्ट के न्याय के अनुसार वस्तुओं को एक-दूसरे के बाद करा सकती है!

तब उसके बाद, सम्भावनाओं की, अप्रत्याशित, अनूठी वस्तुओं की कोई सीमा नहीं रहेगी; और हम इस सम्पूर्णतः स्वतन्त्र 'इच्छा-शक्ति' से भव्यतम, अत्यन्त आनन्दपूर्ण वस्तुओं के होने की आशा कर सकते हैं जो शाश्वततः सभी तत्त्वों के साथ क्रीड़ा कर रही है और अविच्छिन्न रूप से एक नवीन जगत् को उत्पन्न कर रही है जिसका पूर्ववर्ती जगत् के साथ न्यायतः एकदम कोई भी सरोकार नहीं होगा।

तुम्हें नहीं लगता कि यह मनमोहक होगा? हमने इस जगत् का, जैसा कि यह है, काफ़ी अनुभव पा लिया है! क्यों न हम इसे कम-से-कम वैसा बन जाने दें जैसा कि हम समझते हैं कि इसे होना चाहिये?

और इसके बारे में यह सब मैं तुमसे इसलिए कहती हूँ ताकि प्रत्येक व्यक्ति आने वाली सम्भावनाओं के मार्ग में यथासम्भव कम-से-कम बाधाएँ उपस्थित करे। यही है मेरा निष्कर्ष।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ३७९

अतिमानस का अवतरण

इस वर्ष के आरम्भ से एक नयी चेतना, नयी सृष्टि, अतिमानव की तैयारी करने के लिए धरती पर काम में लगी है। इस सृष्टि के सम्भव होने के लिए मानव शरीर को बनाने वाले पदार्थ में एक बहुत बड़ा परिवर्तन ज़रूरी है, उसे चेतना के प्रति अधिक ग्रहणशील और उसकी क्रिया के सम्मुख अधिक नमनीय होना चाहिये।

ये ही वे गुण हैं जिन्हें तुम शारीरिक शिक्षण के द्वारा पा सकते हो।

तो, अगर हम इस तरह के परिणाम को नज़र में रखते हुए ऐसे अनुशासन का पालन करें तो निश्चित ही बहुत अधिक मज़ेदार परिणाम आयेंगे।

सबको प्रगति और उपलब्धि के लिए मेरे आशीर्वाद।

१ अप्रैल १९६९ **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १२, पृ. २९९, ३०१

एक नयी तथा अद्‌भुत शक्ति

सचमुच पृथ्वी **पर** 'शक्ति' उपस्थित है, एक नयी तथा अद्‌भुत 'शक्ति', जो दिव्य सर्वशक्तिमत्ता को अभिव्यक्त करने के लिए पृथ्वी पर आयी है और यह भी कहा जा सकता है कि वह उसे "अभिव्यक्त करने के योग्य" है।

सावधानीपूर्वक तथा ध्यान से किये गये अवलोकन से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ : मैंने देखा है कि जिसे हम "अतिमानसिक" कहते हैं, (एक बेहतर शब्द के अभाव के कारण), वास्तव में यह सृष्टि को उस उच्चतर शक्ति के प्रति अधिक ग्रहणशील बना रही है, जिसे हम "दिव्य" कहते हैं क्योंकि हम... (हम जो हैं उसकी तुलना में यह दिव्य है, परन्तु...)। यह कुछ ऐसा है *(अवरोहण तथा दबाव का संकेत)* जो जड़-भौतिक को अधिक ग्रहणशील तथा अधिक... 'शक्ति' के प्रति अधिक अनुकूल बना देगा। मैं इसे कैसे समझाऊँ?... वर्तमान में, जो कुछ भी हमारे लिए अदृश्य या अगोचर है वह हमारे लिए अवास्तविक है (मेरा मतलब सामान्यतः मनुष्यों से हैं); हम कहते हैं कि कुछ चीज़ें "ठोस" हैं और दूसरी नहीं हैं। लेकिन यह 'शक्ति' यह 'बल', जो भौतिक नहीं है, वह सांसारिक भौतिक चीज़ों की तुलना में पृथ्वी पर अधिक ठोस रूप से प्रभावी होता जा रहा है। यही बात है।

और इस तरह अतिमानसिक सत्ताएँ अपने-आपकी रक्षा तथा अपना बचाव करेंगी। दिखने में यह भौतिक नहीं होगी बल्कि जड़-भौतिक पर इसकी शक्ति भौतिक चीज़ों से अधिक होगी। दिन-पर-दिन, घण्टे-पर-घण्टे यह चीज़ और भी सच्ची, अधिक सच्ची होती जा रही है। यह अनुभव कि जब यह शक्ति उनसे पथ-प्रदर्शित होती है जिन्हें हम "भगवान्" कहते हैं, तब उसमें शक्ति, एक वास्तविक शक्ति होती है—ऐसी शक्ति जो जड़-भौतिक को हिला सकती है, तुम समझ रहे हो; यह किसी भौतिक दुर्घटना का कारण बन सकती है या तुम्हें किसी भौतिक दुर्घटना से पूरी तरह से बचा सकती है, यह किसी एकदम से जड़-भौतिक घटना के परिणामों को रद्द कर सकती है—यह जड़-भौतिक से भी ज़्यादा मज़बूत है। यह बिलकुल नया तथा ऐसा तथ्य है जिसे समझा नहीं जा सकता। परन्तु यह *(वातावरण में फड़फड़ाहट का संकेत)*, सामान्य मानव चेतना में एक प्रकार की घबराहट पैदा करता है।

बस इतना ही। ऐसा लगता है कि... चीज़ें अब वैसी नहीं रहीं जैसी वे थीं। यहाँ सचमुच कुछ नया है—चीज़ें अब वैसी नहीं रहीं जैसी वे थीं।

हमारी सारी बुद्धि, हमारा मानवीय तर्क, हमारा व्यावहारिक ज्ञान—ढह गया, ख़तम हो गया है! अब और प्रभावी नहीं रहा। और वास्तविक नहीं रहा। अब वह और उपयुक्त नहीं रहा।

सचमुच, नया संसार।

६ मई १९७२ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

एक नूतन जगत् का जन्म

हाँ तो, मैंने तुम लोगों के सामने यह घोषणा की थी कि नया संसार उत्पन्न हो चुका है। परन्तु यह पुराने संसार के भँवर-जाल में इतना अधिक निमज्जित था कि आज तक बहुतों को भेद का कुछ ख़ास पता नहीं लगता। फिर भी, नयी शक्तियों का कार्य अत्यन्त नियमित रूप से, अत्यन्त धीर-स्थिर रूप में, अत्यन्त दृढ़ रूप में और एक हद तक अत्यन्त प्रभावशाली रूप में चल रहा है। मेरा कल शाम का अनुभव—सचमुच इतना नवीन अनुभव—इस कार्य की ही एक अभिव्यक्ति था। इस सब का परिणाम मैंने हर क़दम पर प्रायः प्रतिदिन के अनुभवों में लक्ष्य किया है। इसे संक्षेप में, बल्कि

सीधे से रूप में, इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

पहली बात तो यह कि यह आध्यात्मिक जीवन और दिव्य 'सद्वस्तु' का केवल एक "नया विचार" मात्र नहीं है। इस विचार को श्रीअरविन्द ने व्यक्त किया था और स्वयं मैंने भी इसे बहुत बार व्यक्त किया है, इसे कुछ-कुछ ऐसा रूप दिया जा सकता है : पुरानी आध्यात्मिकता का मतलब था, जीवन से भाग कर दिव्य 'सद्वस्तु' में चले जाना और संसार को वहीं और उसी रूप में छोड़ देना जहाँ और जिस रूप में यह था; जब कि, इसके विपरीत, हमारी नयी सृष्टि का स्वरूप है, जीवन को दिव्य बनाना, भौतिक जगत् को दिव्य जगत् में रूपान्तरित करना। यह पहले कहा जा चुका है, बार-बार कहा जा चुका है, बल्कि थोड़ा-बहुत समझा भी जा चुका है, और निश्चय ही यही उस कार्य का आधारभूत विचार है जिसे हम करना चाहते हैं। परन्तु यह ऐसे भी हो सकता था कि उन्नति और विस्तार के साथ पुराना जगत् ही बना रहता—और जब तक यह धारणा विचार के क्षेत्र में मौजूद है, वस्तुतः यह उससे भिन्न चीज़ लगभग हो नहीं सकती—परन्तु जो चीज़ हुई है, सचमुच में नयी चीज़, वह यह है कि एक नया संसार **जन्मा है, जन्मा है, जन्मा है**। यह रूपान्तरित होता हुआ पुराना संसार नहीं है, बल्कि यह एक **नया** संसार है जो **जन्मा** है। और हम ठीक उस काल में हैं जो संक्रमण का काल है जहाँ दोनों एक-दूसरे में गुँथे हैं—जहाँ दूसरा अभी तक सर्वशक्तिमान् बना हुआ है और साधारण चेतना को पूरी तरह शासित करता है, पर जहाँ नया भी चुपके-से प्रवेश कर जाता है, बहुत नम्र बने रह कर और बिना पता लगे—इसका पता इस हद तक नहीं लग पाता क्योंकि बाहरी रूप में यह अभी तक अधिक उलट-फेर नहीं कर रहा, और अधिकतर लोगों की चेतना के लिए तो एकदम अलक्ष्य है। फिर भी यह कार्यरत है और बढ़ रहा है—समय आयेगा जब यह इतना प्रबल हो जायेगा कि दृश्य रूप में भी अपने-आपको प्रतिष्ठित कर लेगा।

धर्मों का युग समाप्त हुआ

जो भी हो, चीज़ों को सरल ढंग से प्रस्तुत करने के लिए यह कहा जा सकता है कि पुराना संसार, जिसे श्रीअरविन्द ने अधिमानसिक सृष्टि कहा है, विशिष्ट रूप में, देवताओं का युग था और फलस्वरूप धर्मों का

युग था। और जैसा कि मैंने कहा, यह अपने से उच्चतर वस्तु के प्रति मानव प्रयास का पुष्प-रूप था, इसने अनेक धर्मों को जन्म दिया जो कि सर्वश्रेष्ठ आत्माओं और अदृश्य जगत् के बीच एक धार्मिक सम्पर्क-रूप थे। इन सबसे ऊपर एक और भी अधिक ऊँची उपलब्धि को पाने के प्रयत्न-स्वरूप धर्मों की एकता के विचार ने, सब अभिव्यक्त धर्मों के पीछे स्थित इस "अद्वितीय किसी वस्तु" के विचार ने जन्म लिया; और यह विचार, कहा जा सकता है कि, सचमुच मानव अभीप्सा की पराकाष्ठा था। हाँ तो, यह है अग्रभाग, एक ऐसी चीज़ जो अभी तक **पूरी तरह** अधिमानसिक जगत् से, अधिमानसिक सृष्टि से सम्बन्ध रखती है और वहाँ से इस "दूसरी किसी चीज़" को देखती प्रतीत होती है जो एक नयी सृष्टि है, पर इसे पकड़ नहीं पाती—इस तक पहुँचने का प्रयत्न करती है, इसे आता हुआ अनुभव करती है, पर इसे समझ नहीं पाती। इसे समझने के लिए चेतना का विपर्यय ज़रूरी है। यह ज़रूरी है कि अधिमानसिक सृष्टि से बाहर निकल आया जाये। यह ज़रूरी है कि नयी सृष्टि, अतिमानसिक सृष्टि आविर्भूत हो।

और अब ये सब पुरानी चीज़ें इतनी पुरानी, इतनी अव्यवहार्य, इतनी मनमानी-सी प्रतीत होती हैं—जैसे ये वास्तविक सत्य की विडम्बना हों।

अब और धर्म नहीं

अतिमानसिक जगत् में **धर्म नहीं रहेंगे**। सारा जीवन ही जगत् में प्रकट होती हुई दिव्य 'एकता' की, रूपों में अभिव्यक्ति एवं प्रस्फुटन होगा। और जिन्हें लोग आज देवता कहते हैं वे भी नहीं रहेंगे।

ये महान् दिव्य सत्ताएँ स्वयं भी नयी सृष्टि में भाग ले सकेंगी; पर इसके लिए उन्हें उस परिधान के साथ जिसे "अतिमानसिक उपादान" कहा जा सकता है, पृथ्वी पर आना होगा। और यदि उनमें से कुछ अपने ही जगत् में, जैसी वे हैं वैसी ही, बनी रहना पसन्द करें, यदि वे यह निश्चय करें कि उन्हें भौतिक रूप में अभिव्यक्त नहीं होना है तो उनका सम्बन्ध अतिमानसिक पृथ्वी के प्राणियों के साथ मित्रता का, सहयोगिता का, और बराबरी का सम्बन्ध होगा, क्योंकि उच्चतम दिव्य तत्त्व नये अतिमानसिक जगत् के प्राणियों में पृथ्वी पर प्रकट हो चुका होगा।

जब भौतिक उपादान अतिमानसिक रूप ले लेगा तो पृथ्वी पर जन्म लेना हीनता का परिचायक नहीं रह जायेगा, इसके ठीक विपरीत, इससे उस परिपूर्णता एवं प्राचुर्य को प्राप्त किया जा सकेगा जो किसी और तरह नहीं पाया जा सकता।

महान् अभियान्

परन्तु यह सब भविष्य की बात है, उस भविष्य की... जो **शुरू हो चुका है**, पर इसे पूरी तरह से चरितार्थ होने में कुछ समय लगेगा। इस बीच, हम एक ऐसी विशेष, अतीव विशेष अवस्था में स्थित हैं जैसी पहले कभी नहीं आयी। हम उस वेला में उपस्थित हैं जब नया जगत् जन्म ले रहा है, पर जो बहुत छोटा है, दुर्बल है—अपने सार-रूप में नहीं बल्कि बाह्य अभिव्यक्ति में—जो अभी पहचाना नहीं गया, अनुभव नहीं किया गया, और बहुतों ने तो उससे इन्कार ही कर दिया है। पर यह मौजूद है। मौजूद है और बढ़ने का प्रयत्न भी कर रहा है तथा परिणाम के बारे में **सुनिश्चित** है। तो भी इस तक पहुँचने वाला पथ बिलकुल नया पथ है जिस पर अब तक कोई नहीं चला—कोई नहीं गया, किसी ने अभी तक ऐसा नहीं किया! यह आरम्भ है, एक **विश्वव्यापी आरम्भ**। इसलिए यह एक बिलकुल अप्रत्याशित और अकल्पित अभियान है।

कुछ लोगों को अभियान प्रिय होते हैं। उन्हीं लोगों का मैं आह्वान कर रही हूँ और उनसे यह कहती हूँ: "मैं तुम्हें इस महान् अभियान के लिए आमन्त्रित करती हूँ।"

यह आध्यात्मिक रूप से उन्हीं कार्यों को, जिन्हें दूसरे हमसे पहले कर चुके हैं, दोबारा करने का प्रश्न नहीं है, क्योंकि हमारा अभियान उससे आगे से शुरू होता है। यह नयी सृष्टि का, बिलकुल नयी सृष्टि का प्रश्न है जिसमें सब अदृष्ट घटनाक्रम, संकट, ख़तरे एवं संयोग मौजूद हैं—**एक सच्चा अभियान**। इसका लक्ष्य है सुनिश्चित विजय, पर उधर जाने का मार्ग अज्ञात है, इसे बीहड़ प्रदेश में से पग-पग पर खोजना होगा। यह एक ऐसी बात है जो इस वर्तमान जगत् में इससे पहले कभी नहीं हुई और इसी रूप में फिर **कभी होगी भी नहीं**। यदि तुम्हें इसमें रुचि हो... हाँ तो, हम लंगर उठायें। कल तुम्हारे साथ क्या होगा—इसके बारे में मैं कुछ

नहीं जानती।

उस सबको एक तरफ़ रख दो जो पहले देखा जा चुका है, सोचा जा चुका है, बनाया जा चुका है और तब... अज्ञात में चलना शुरू करो। जो होना है, हुआ करे! तो, ठीक है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. १६५-६९

सुनहरी शक्ति भौतिक द्रव्य पर दबाव डाल रही है

मेरा ख़याल है कि मैं तुम्हें पहले ही बता चुकी हूँ कि एक सुनहरी 'शक्ति' नीचे दबाव डाल रही है *(दबाने की मुद्रा)*, उसमें कोई भौतिक घनता नहीं है, फिर भी वह बहुत अधिक भारी मालूम होती है...

जी, जी हाँ।

... और वह 'भौतिक द्रव्य' पर दबाव डाल रही है ताकि वह अन्दर से भगवान् की ओर मुड़ने के लिए मजबूर हो जाये—बाहर से पलायन द्वारा नहीं *(ऊपर की ओर इशारा)*, परन्तु अन्दर से भगवान् की ओर मुड़ना। और इसलिए प्रत्यक्ष परिणाम यही दिखायी देता है मानों विभीषिकाएँ अनिवार्य थीं। और फिर भी अनिवार्य विभीषिकाओं के इस बोध के साथ, स्थिति के कुछ समाधान भी साथ ही हैं। ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं जो अपने-आपमें बिलकुल चमत्कारिक होती हैं। ऐसा लगता है कि दोनों छोर ज़्यादा-से-ज़्यादा पराकाष्ठा पर पहुँच रहे हैं, मानों जो अच्छा है ज़्यादा अच्छा, और जो बुरा है वह ज़्यादा बुरा होता जा रहा है। बात ऐसी ही है। उस ज़बरदस्त 'शक्ति' के बारे में मुझे ऐसा ही लगा जो जगत् पर दबाव डाल रही है।

जी हाँ, यह बोधगम्य है।

हाँ, यह इस तरह अनुभव होती है *(माताजी हवा में उँगलियाँ चलाती हैं)*। और तब परिस्थितियों में बहुत-सी चीज़ें जो सामान्यतः उदासीनता के साथ होती रहती हैं, वे तीव्र हो जाती हैं; परिस्थितियाँ, अन्तर तीव्र हो जाते हैं; दुर्भावनाएँ तीव्र हो जाती हैं; और **साथ ही** असाधारण चमत्कार—असाधारण! मरते-मरते आदमी बचा लिये जाते हैं, जटिल चीज़ें अचानक सुलझ जाती हैं।

और फिर, व्यक्तियों के बारे में भी यही बात है।

जो जानते हैं कि उस ओर कैसे मुड़ा जाये... (कैसे कहा जाये?) जो सच्चाई के साथ भगवान् को पुकारते हैं, जो यह अनुभव करते हैं कि यही एकमात्र निस्तार है, उसमें से निकलने का एक ही रास्ता है, जो सच्चाई के साथ अपने-आपको दे देते हैं, तो *(सहसा फटने का संकेत)* कुछ ही मिनटों में चीज़ अद्‌भुत हो जाती है। छोटी-से-छोटी चीज़ों के लिए—कोई भी चीज़ छोटी या बड़ी, महत्त्वपूर्ण या महत्त्वहीन नहीं है—सबके लिए यही बात है।

मूल्य बदल जाते हैं।

ऐसा लगता है मानों संसार का परिदृश्य बदल गया हो। *(मौन)*

ऐसा लगता है जैसे अतिमन के अवतरण से संसार में जो परिवर्तन आयेगा, यह उसका कुछ अनुमान देने के लिए था। सचमुच जो चीज़ें तटस्थ थीं वे निरपेक्ष हो जाती हैं: ज़रा-सी भूल अपने परिणामों में सुस्पष्ट हो जाती है और ज़रा-सी सच्चाई, ज़रा-सी सच्ची अभीप्सा अपने परिणामों में चमत्कारिक हो जाती है। लोगों में मूल्य तीव्र हो गये हैं और भौतिक दृष्टि से भी बहुत छोटा-सा दोष, छोटे-से-छोटा दोष भी बड़े परिणाम लाता है और अभीप्सा में ज़रा-सी सच्चाई भी आश्चर्यजनक परिणाम लाती है। मूल्य बहुत तीव्र हो गये हैं, यथार्थ बन गये हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. ३३३-३४

हम वैश्व जीवन के एक विशेष सौभाग्यशाली मुहूर्त में हैं,
जब धरती की हर चीज़ को नयी सृष्टि के लिए,
बल्कि यूँ कहें,
शाश्वत सृजन के अन्दर
एक नयी अभिव्यक्ति के लिए तैयार किया जा रहा है।

*

हर एक के लिए सबसे अच्छी बात यह है कि वह जितनी अधिक सच्चाई से हो सके, प्रगति करे। भौतिक कष्ट रूपान्तर के कार्य का भाग हैं और उन्हें शान्ति के साथ स्वीकार कर लेना चाहिये।

श्रीमाँ

महान् परिवर्तन

नूतन सर्जन के लिए तैयारी

माताजी, 'जगत् एक बड़े परिवर्तन के लिए तैयारी कर रहा है, क्या तुम सहायता करोगे?' वह महान् परिवर्तन कौन-सा है जिसके बारे में आपने कहा है? और हम उसमें किस प्रकार सहायता कर सकते हैं?

यह महान् परिवर्तन जगत् में एक नयी जाति का प्रादुर्भाव करेगा जो मनुष्य के लिए वैसी ही होगी जैसा पशु के लिए मनुष्य है। इस नयी जाति की चेतना धरती पर उन लोगों को प्रबुद्ध करने के लिए कार्य कर रही है जो उसे प्राप्त करने और उसकी ओर ध्यान देने में समर्थ हैं।

आपने हमसे सहायता करने के लिए कहा है। मैं आपकी सहायता किस तरह कर सकता हूँ? मुझे क्या करना है?

एकाग्र रहना और नयी विकसनशील चेतना को ग्रहण करने के लिए खुला रहना, उन नयी चीज़ों को ग्रहण करना जो नीचे उतर रही हैं।

परिवर्तन को आने के लिए हमारी सहायता की आवश्यकता नहीं है, लेकिन हमें अपने-आपको चेतना के प्रति खुला रखने की आवश्यकता है ताकि उसका आगमन हमारे लिए व्यर्थ न हो।

पिछले साल जो नयी चेतना उतरी थी उसकी क्रिया को मुक्त रूप से कार्य करने देने के लिए साधक को क्या करना चाहिये?

१. ग्रहणशील बनो
और
२. नमनीय बनो।

नयी चेतना को ग्रहण करने के लिए, स्वयं को तैयार करने के लिए पहली अनिवार्य शर्त है सच्ची और सहज नम्रता जो हमें गभीर रूप से इसका अनुभव कराती है कि हमें जो अद्‌भुत वस्तुएँ प्राप्त करनी हैं उनके सामने हम कुछ भी नहीं जानते और कुछ नहीं हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. ११७-१८

अहं ही बड़ी बाधा है

लेकिन एक आवश्यक शर्त है : अहं का राज्य समाप्त होना चाहिये। अब अहं ही रुकावट है, अहं के स्थान पर वह दिव्य चेतना आनी चाहिये जिसे स्वयं श्रीअरविन्द ने "अतिमानस" कहा है; हम उसे अतिमानस कह सकते हैं ताकि कोई ग़लतफ़हमी न हो, क्योंकि जब हम "भगवान्" की बात करते हैं तो लोग झट "देव" समझ लेते हैं और सब कुछ बिगड़ जाता है। बात ऐसी नहीं है। नहीं, यह वह नहीं है *(माताजी धीरे-धीरे अपनी बन्द मुट्ठियाँ नीचे लाती हैं)*। यह अतिमानसिक लोक का अवतरण है जो निरी कल्पना नहीं है *(ऊपर की ओर इशारा)*, यह पूरी तरह भौतिक 'शक्ति' है, लेकिन इसे भौतिक साधनों की ज़रूरत नहीं। एक ऐसा लोक जो जगत् में शरीर धारण करना चाहता है। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ११, पृ. ३३७

अगर विश्व-युद्ध छिड़ जाये तो उससे न केवल मानवता का अधिकांश नष्ट हो सकता है बल्कि जो बचे रहेंगे उनके लिए भी आणविक निक्षेप के प्रभाव के कारण जीने की परिस्थितियाँ असम्भव हो उठेंगी। अगर ऐसे युद्ध की अब तक सम्भावना बनी है तो क्या धरती पर 'अतिमानसिक सत्य' और 'नयी जाति' के आगमन पर प्रभाव न पड़ेगा?

ये सभी मानसिक अनुमान हैं और एक बार मानसिक कल्पनाओं के क्षेत्र में घुस जाने पर समस्याओं और उनके समाधानों का कोई अन्त नहीं होता। लेकिन ये सब तुम्हें सत्य के एक पग भी निकट नहीं लाते।

मन के लिए सबसे सुरक्षित और सबसे स्वस्थ मनोवृत्ति इस तरह की है : हमसे सुनिश्चित और सकारात्मक तरीक़े से कहा गया है कि वर्तमान सृष्टि के बाद अतिमानसिक सृष्टि आयेगी, अतः, भविष्य के लिए जो कुछ तैयारी हो रही है वह उस आगमन के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ होंगी चाहे वे कुछ भी क्यों न हों और चूँकि हम इन परिस्थितियों का ठीक-ठीक पूर्वदर्शन करने में असमर्थ हैं, अतः इनके बारे में चुप रहना ज़्यादा अच्छा है।

कठिनाइयों का पूर्वानुमान करना उन्हें आने में सहायता देना है।

परम कृपा में पूर्ण विश्वास रख कर हमेशा अच्छे-से-अच्छे का पूर्वदर्शन करना धरती पर अतिमानसिक कार्य में प्रभावशाली रूप से सहयोग देना है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. १२२-२३

नये जगत् में सहयोग देना

इसमें कितना समय लगेगा यह पहले से देखना कठिन है। यह अधिकतर कुछ लोगों की शुभेच्छा और ग्रहणशीलता पर निर्भर करेगा, कारण, व्यक्ति सदा ही समूह की अपेक्षा अधिक तेज़ी से आगे बढ़ता है और अपनी प्रकृतिवश मानवजाति की ही शेष सृष्टि से पहले अतिमानस को अभिव्यक्त करने के लिए दैवनिर्दिष्ट है।

निश्चय ही इस सहयोग के आधार में परिवर्तन का संकल्प होना चाहिये, यह संकल्प कि हम जैसे हैं वैसे ही न बने रहें और यह कि वस्तुएँ जैसी हैं वैसी ही न बनी रहें। इसे करने के कई तरीक़े हैं। और जब वे सफल हो जाती हैं तो सभी पद्धतियाँ अच्छी होती हैं! कोई व्यक्ति इस वर्तमान स्थिति से बहुत गहराई से विरक्त होकर उससे बाहर आने और किसी अन्य वस्तु को पाने की तीव्र चाह अनुभव कर सकता है। कोई दूसरा ऐसा अनुभव कर सकता है—और यह अधिक सकारात्मक पद्धति है—वह अपने अन्दर सुनिश्चित रूप से किसी सुन्दर और सत्य वस्तु का संस्पर्श एवं सान्निध्य पाकर स्वेच्छा से शेष सबको छोड़ने के लिए तैयार हो सकता है ताकि इस नये सौन्दर्य और सत्य की ओर प्रयाण में कोई चीज़ भार न बने।

प्रत्येक दशा में जो चीज़ अनिवार्य है वह है प्रगति के लिए एक उत्कट संकल्प और अग्रगति को अटकाने वाली सभी चीज़ों का स्वेच्छा से प्रसन्नतापूर्वक त्याग: आगे बढ़ने से जो कुछ रोकता हो उसे अपने से परे फेंक दो और अज्ञात की ओर इस प्रज्वलित विश्वास के साथ कूच करो कि यही कल का सत्य है, यह **अवश्यम्भावी** है, अवश्य प्रकट होगा, कोई चीज़, कोई व्यक्ति, कोई असद्भावना, यहाँ तक कि 'प्रकृति' भी, इसे वास्तविक रूप लेने से नहीं रोक सकती—शायद यह सुदूर भविष्य की चीज़ नहीं है—यह एक वास्तविकता है जो इस क्षण भी क्रियान्वित की जा रही है। और जो परिवर्तित होना तथा पुरानी आदतों से अपने को बोझिल न होने देना जानते हैं वे **निश्चय** ही उसे न केवल देखने का, बल्कि जीवन में चरितार्थ करने का सौभाग्य भी प्राप्त करेंगे।

लोग सो जाते हैं, भूल जाते हैं, जीवन को हलके रूप में लेते हैं—वे भूले रहते हैं, सारे समय भूले रहते हैं...। परन्तु यदि तुम यह याद रख सको... कि हम एक विशेष घड़ी में, एक **अनुपम** काल में उपस्थित हैं, और

यह कि नये जगत् के प्रादुर्भाव के समय उपस्थित होने का एक बहुत बड़ा सौभाग्य, एक बहुमूल्य अवसर हमें प्राप्त हुआ है तो तुम उस सबसे आसानी से छुटकारा पा सकते हो जो बाधा पहुँचाता और तुम्हारी प्रगति को अटकाता है।

तो जो चीज़ सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है वह है इस तथ्य को याद रखना; इसकी ठोस अनुभूति न होने पर भी इसमें निश्चयता और विश्वास बनाये रखना; सदा याद रखना, बार-बार उस स्मृति को वापस बुला लाना, इसी विचार के साथ सोना, इसी भावना के साथ उठना; जो कुछ भी करना सब इसी महान् सत्य को, एक सतत अवलम्ब के रूप में, पृष्ठभूमि में रखते हुए करना कि हम एक नये जगत् के प्रादुर्भाव की वेला में उपस्थित हैं।

हम इसमें भाग ले सकते हैं, हम यह नया जगत् बन सकते हैं। और सचमुच, जब तुम्हें इतना अद्‌भुत अवसर प्राप्त हुआ है तो इसके लिए सब कुछ छोड़ने को तत्पर होना चाहिये।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. १७६-७७

अप्रत्याशित मोड़

... हम असाधारण युग में, जगत् के इतिहास में एक असाधारण मोड़ पर जी रहे हैं। शायद इससे पहले संसार कभी आज के जैसे घृणा, रक्तपात और अस्तव्यस्तता के अँधेरे काल में से नहीं गुज़रा। साथ ही यह भी ठीक है कि इससे पहले मनुष्यों के हृदयों में इतनी प्रबल और इतनी उत्साहपूर्ण आशा भी कभी नहीं जागी। निःसन्देह, अगर हम अपने हृदय की आवाज़ को सुनें तो तुरन्त पता चल जायेगा कि हम न्यूनाधिक सचेतन रूप से, न्याय, सौन्दर्य, सामञ्जस्यपूर्ण सद्‌भावना और भाईचारे के नये राज्य की प्रतीक्षा कर रहे हैं। और यह बहुत बड़ा विरोधाभास मालूम होता है, क्योंकि ये चीज़ें आज के संसार की स्थिति से एकदम उलटी हैं। लेकिन हम सबको मालूम है कि प्रभात से पहले रात्रि सबसे अधिक अँधेरी होती है। तो यह अँधेरा आती हुई उषा की सूचना तो नहीं दे रहा? अभी तक रात कभी इतनी अँधेरी और भयावह नहीं हुई, इसलिए शायद आने वाला प्रभात भी बहुत अधिक ज्योतिर्मय, बहुत पवित्र और उज्ज्वल हो...। रात के दुःस्वप्नों के बाद जगत् एक नयी चेतना में जाग उठेगा।

जिस सभ्यता का आज ऐसे नाटकीय ढंग से अन्त हो रहा है उसका आधार मन की शक्तियों पर था और मन ही जड़ और जीवन पर शासन करता था। हमें यहाँ इस विषय पर विचार नहीं करना है कि उसने जगत् के लिए क्या किया। हाँ, एक नया राज्य आ रहा है, यह आत्मा का राज्य होगा। मानव के बाद ईश्वर की बारी है।

फिर भी अगर हमें ऐसे अद्वितीय और अद्‌भुत काल में धरती पर जन्म लेने का अवसर मिला है तो क्या यह पर्याप्त है कि हम बैठे-बैठे, होने वाली घटनाओं को देखते रहें? वे सब जिन्हें लगता है कि उनके हृदय अपने ही व्यक्तित्व या अपने ही परिवार तक सीमित नहीं हैं, उनके विचार अपने व्यक्तिगत स्वार्थों और स्थानीय सम्बन्धों से ही जुड़े नहीं हैं, संक्षेप में कहें तो वे सब जो यह अनुभव करते हैं कि वे स्वयं अपने या अपने परिवार के या अपने देश के भी नहीं हैं, बल्कि उस भगवान् के हैं जो अपने-आपको सभी देशों में मनुष्य के रूप में प्रकट करते हैं, वे ही लोग जानते हैं कि उन्हें ऊपर उठना चाहिये और मानवजाति के लिए, नव प्रभात के स्वागत के लिए काम करना चाहिये।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. १७६-७७

नव युग के अन्वेषक

... जो लोग नव युग में मानवता के भविष्य की सबसे अधिक सहायता करेंगे वे वही होंगे जो आध्यात्मिक विकास को ही नियति और मानवजाति की सबसे बड़ी आवश्यकता के रूप में स्वीकार करेंगे—एक ऐसे विकास या परिवर्तन को जो वर्तमान मानवजाति को आध्यात्मीकृत मानवता में उसी तरह बदल देगा जैसे एक बड़ी हद तक पाशविक मनुष्य उच्च स्तर की मानसिक मानवजाति में बदला है।

वे अमुक विश्वासों या धर्म के रूपों की ओर से अपेक्षया उदासीन होंगे और मनुष्यों को उन विश्वासों और रूपों को अपनाने देंगे जिनकी ओर वे स्वभावतः आकर्षित हों। वे इस आध्यात्मिक परिवर्तन में श्रद्धा को ही आवश्यक मानेंगे। विशेषकर, वे यह सोचने की भूल नहीं करेंगे कि यह परिवर्तन यन्त्रों या बाहरी प्रथाओं के द्वारा लाये जा सकेंगे। वे यह बात जानते होंगे और इसे कभी न भूलेंगे कि ये परिवर्तन तब तक कभी

वास्तविक नहीं बन सकते जब तक कि हर एक इन्हें अपने आन्तरिक जीवन में साधित न कर ले।

इन व्यक्तियों में नारियों को ही सबसे पहले यह महान् परिवर्तन साधना होगा, क्योंकि उनका विशेष कार्य है, इस संसार में नयी जाति के पहले नमूने को जन्म देना। और यह कर सकने के लिए उन्हें न्यूनाधिक रूप से अपने विचारों में कल्पना करनी होगी कि इस आध्यात्मिक परिवर्तन का क्या परिणाम होगा। क्योंकि अगर यह केवल बाह्य रूपान्तर से सिद्ध नहीं होता तो हमें यह जान लेना चाहिये कि अतिमानव को इस रूपान्तर के बिना नहीं बुलाया जा सकता।

वे निश्चित रूप से बौद्धिक की अपेक्षा सामाजिक और नैतिक क्षेत्रों में कम नहीं होंगे।

क्योंकि धार्मिक विश्वास और मत गौण हो जायेंगे इसीलिए नैतिक विधि-निषेध, आचरण के नियम या रूढ़ियों का कोई मूल्य न रहेगा।

मानव तथा अतिमानव

वास्तव में, मानव जीवन में सारी नैतिक समस्या प्राणिक इच्छाओं और आवेगों तथा मानसिक शक्ति के आदेशों के संघर्ष पर केन्द्रित है। जब प्राणिक इच्छा-शक्ति मानसिक शक्ति के अधीन हो तो व्यक्ति या समाज का जीवन नैतिक हो जाता है। लेकिन जब प्राणिक इच्छा और मानसिक शक्ति दोनों, समान रूप से एक अधिक ऊँची चीज़, अतिमानस के आधीन हों, केवल तभी मानव जीवन को पार किया जा सकता है और सच्चे आध्यात्मिक जीवन का, अतिमानव के जीवन का आरम्भ होता है। उसका विधान अन्दर से आयेगा, वह दिव्य विधान होगा जो हर सत्ता के केन्द्र में चमकता हुआ वहीं से जीवन पर शासन करेगा। यह दिव्य विधान अपनी अभिव्यक्ति में तो बहुविध होता है लेकिन अपने मूल में एक ही रहता है और इस एकता के कारण ही वह चरम व्यवस्था और सामञ्जस्य का विधान है।

इस भाँति व्यक्ति, जो अहंकार-भरे हेतुओं, विधि-विधानों, रीति-रिवाजों से प्रेरित न होगा, सभी अहंकार-भरे लक्ष्यों को त्याग देगा। पूर्ण अनासक्ति ही उसका नियम होगा। इहलोक में या परलोक में व्यक्तिगत लाभ पाने के लिए कार्य करना उसके लिए कल्पनातीत और असम्भव होगा। उसका

हर एक कर्म प्रेरणा देने वाले दिव्य विधान की आज्ञानुसार पूर्ण, सरल और आनन्दमय आज्ञापालन होगा जिसमें परिणामों या पुरस्कारों की माँग न होगी, क्योंकि उस प्रेरणा के अनुसार कार्य करना, स्वयं अन्तर-स्थित भागवत तत्त्व के साथ चेतना और संकल्प में ऐक्य प्राप्त करने का आनन्द प्राप्त करना ही अपने-आपमें परम पुरस्कार होगा।

और इस तादात्म्य में ही अतिमानव अपना सामाजिक स्तर पायेगा। क्योंकि वह अपने अन्दर दिव्य विधान को पाकर, उसी दिव्य विधान को हर एक सत्ता के अन्दर देख सकेगा और अपने अन्दर उसके साथ तादात्म्य पाकर औरों के अन्दर भी उसके साथ तादात्म्य का अनुभव करेगा, और इस प्रकार केवल तत्त्व या सार रूप में ही नहीं, जीवन के अत्यन्त बाहरी स्तरों और रूपों में भी, सबकी एकता का भान प्राप्त कर लेगा। वह कोई मन, प्राण या शरीर न होकर उन्हें अनुप्राणित करने और सहारा देने वाली नीरव, शान्त और शाश्वत आत्मा होगा जो इन सब पर शासन करती है; और वह देखेगा कि यही आत्मा हर जगह, सभी मन, प्राण, शरीरों को अनुप्राणित करती और सहारा देती है। वह इस 'आत्मा' को भागवत स्रष्टा और सभी कर्मों के कर्ता के रूप में जानेगा जो सभी सत्ताओं में मौजूद है; क्योंकि वैश्व अभिव्यक्ति की अनेक आत्माएँ एक ही भगवान् के अनेक चेहरे हैं। वह हर एक सत्ता को इस रूप में देखेगा मानों वही वैश्व भागवत सत्ता उसके सम्मुख विभिन्न रूपों में आ रही है। वह अपने-आपको उस 'एक सत्ता' में मिला देगा और स्वयं अपने मन, प्राण और शरीर को उसी 'आत्मा' के पहलुओं के रूप में लेगा और आज वे सब, जिन्हें हम अपने से अलग मानते हैं, वे उसकी चेतना के लिए विभिन्न मन, प्राण और शरीरों में उसके स्व के ही रूप होंगे। वह सबके शरीरों में अपने शरीर को एक अनुभव कर सकेगा, क्योंकि उसे सारे पदार्थ की एकता का सतत भान होगा; वह सभी सत्ताओं के मन और प्राण के साथ अपने-आपको एक कर लेगा। संक्षेप में कहें तो वह औरों में अपने-आपको और अपने अन्दर औरों को देखेगा और अनुभव करेगा। इस प्रकार ऐक्य की पूर्णता में सच्ची एकात्मता की उपलब्धि करेगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. १८४-८७

वहाँ द्वन्द्वों का विरोध नहीं था, कोई अंश पृथक् नहीं थे।
सब आत्मिक कड़ियों से आपस में सबसे जुड़े थे
और अटूटता से परमैकम् प्रभु से बँधे थे:
प्रत्येक अपने में अद्वितीय था किन्तु सब जीवनों को अपने जैसा मानता,
और, वह परम-नित्य के इन विभिन्न रंगों का अनुसरण कर,
अपनी अन्तरात्मा में सकल विश्व को पहचान गया।...

कोई भी पृथक् नहीं था, कोई भी मात्र अपने लिए अकेला जीवित नहीं था,
प्रत्येक अपने अन्तर में बसे प्रभु हित और सबमें बसे प्रभु के लिए जीवित था,
प्रत्येक के एकाकीपन में अव्यक्त भाव से समग्रता का वास था।

सावित्री, पृ.३२३-२४

नयी जाति की झलकें

मनुष्य अन्तर्वर्ती सत्ता है

मनुष्य अन्तर्वर्ती सत्ता है। वह अन्तिम नहीं है क्योंकि उसमें और उसके परे वे ज्योतिर्मय सोपान उठते हैं जो दिव्य अतिमानवता तक आरोहण करते हैं। धरती के क्रमविकास में मानव से अतिमानव की ओर क़दम ही आने वाली उपलब्धि है। यही हमारी नियति है और हमारी अभीप्सा करने वाली परन्तु मुश्किल में पड़ी सीमित सत्ता को मुक्त करने वाली चाबी है। यह अनिवार्य है, क्योंकि यह एक ही साथ आन्तरिक आत्मा का अभिप्राय और प्रकृति की प्रक्रिया का तर्क है।

भौतिक और पाशविक जगत् में मानव सम्भावना का आविर्भाव आने वाले दिव्य प्रकाश की पहली झलक, भौतिक तत्त्व में से जन्म लेने वाले देव की प्रथम दूरागत सूचना थी। मानव जगत् में अतिमानव का आविर्भाव होगा—उस दूरस्थ प्रकाशमय प्रतिज्ञा की परिपूर्णता।

मानव और अतिमानव के बीच वही भेद होगा जो मानव मन और उस चेतना के बीच होगा जो उससे उतनी ही परे है जितना चिन्तनशील मन वनस्पति और पशु की चेतना से परे है। मानव का भेद करने वाला तत्त्व है मन, और अतिमानव का भेद करने वाला तत्त्व होगा अतिमन या भागवत विज्ञान। मनुष्य बन्दी मन है जो अस्थिर और अपूर्ण जीवन में अपूर्ण रूप से सचेतन शरीर में छिपा और घिरा हुआ है। अतिमानव अतिमानसिक आत्मा होगा जो सचेतन और आध्यात्मिक शक्तियों के प्रति नमनीय और सचेतन शरीर को आवेष्टित करेगा और खुल कर उसका उपयोग करेगा। उसका शारीरिक ढाँचा जड़-भौतिक में आत्मा की दिव्य लीला और उसके कार्य के लिए दृढ़ सहारा और पर्याप्त ज्योतिर्मय उपकरण होगा।...

अतिमानस या विज्ञान अपनी मौलिक प्रकृति में एक ही साथ एक ही गति में अनन्त प्रज्ञा और अनन्त इच्छा है। अपने स्रोत में वह भागवत ज्ञाता और स्रष्टा की क्रियाशील चेतना है।

जब एकमेव सत्ता की सदा अधिकाधिक उन्मीलन प्रक्रिया में इस शक्ति का कोई प्रतिनिधि हमारी सीमित मानव प्रकृति में उतरे, तब और केवल तभी मनुष्य अपना अतिक्रमण कर सकता है और दिव्य रूप से

जान सकता, दिव्य रूप से क्रिया और रचना कर सकता है। अन्ततः वह शाश्वत का एक सचेतन भाग बन जायेगा। अतिमानव का जन्म होगा, किसी बढ़ी-चढ़ी मानसिक सत्ता का नहीं, बल्कि एक अतिमानसिक शक्ति का जो यहाँ रूपान्तरित पार्थिव शरीर के नये जीवन में उतरेगी। पार्थिव प्रकृति में उतरी हुई आत्मा के लिए अगली स्पष्ट, उल्लसित विजय होगी—विज्ञानमय अतिमानवता।...

अतिमानव अपने स्वाभाविक चरम बिन्दु तक पहुँचा हुआ मनुष्य नहीं है। वह मानव महानता, ज्ञान, शक्ति, बुद्धि, इच्छा, चरित्र, प्रतिभा, क्रियाशील शक्ति, साधुता, प्रेम, शुद्धि या पूर्णता की एक श्रेष्ठतर अवस्था नहीं है।

अतिमानव एक ऐसी चीज़ है जो मानसिक मनुष्य और उसकी सीमाओं से परे है, मानव प्रकृति के लिए समीचीन उच्चतम चेतना से बड़ी चेतना है।

अपने-आपमें मनुष्य एक महत्त्वाकांक्षी न-कुछ से बढ़ कर नहीं है। वह एक संकीर्णता है जो पकड़ में न आने वाले विस्तार की ओर बढ़ती है, एक लघुता है जो अपने से परे की महानताओं की ओर बढ़ने के लिए भरसक कोशिश में लगी है, एक बौना है जो ऊँचाइयों पर मोहित है। उसका मन वैश्व मन के वैभवों में एक अँधेरी किरण है। उसका प्राण वैश्व प्राण की एक प्रयत्नशील, उल्लसित और पीड़ित लहर, एक उत्सुक, आवेगों में भटकता, दुःख का मारा या अन्धा, मन्दगति से परिश्रम करता हुआ तुच्छ क्षण है। उसका शरीर भौतिक विश्व में परिश्रम करता हुआ मर्त्य कण है। एक अमर अन्तरात्मा उसके अन्दर कहीं पर छिपी हुई है और समय-समय पर अपनी उपस्थिति की कुछ चिनगारियाँ छोड़ती रहती है। एक शाश्वत आत्मा उसके ऊपर है और अपने पंखों से उस पर छायी रहती है और इस अन्तरात्मिक सातत्य को उसकी प्रकृति में अपनी शक्ति के द्वारा बनाये रखती है। लेकिन उसके निर्मित व्यक्तित्व का कठोर ढक्कन उस महत्तर आत्मा के अवतरण में बाधा देता है और उसकी आन्तरिक ज्योतिर्मयी अन्तरात्मा घने बाहरी आवरणों में लिपटी, कुचली हुई और अत्याचार-पीड़ित रहती है। कुछ को छोड़ कर प्रायः सभी में वह कभी-कदास ही सक्रिय होती है, बहुतों में तो मुश्किल से दिखायी देती है। ऐसा मालूम होता है कि मनुष्य में अन्तरात्मा और आत्मा उसकी दृश्य वास्तविकता का भाग न होकर उसकी निर्मित प्रकृति के ऊपर और पीछे विद्यमान हैं। वे उसकी आन्तरिक सत्ता

में अन्तर्लीन या पहुँच के बाहर की किसी अवस्था में अतिचेतन हैं। उसकी बाहरी चेतना में वे उपलब्ध और विद्यमान वस्तुएँ न होकर सम्भावनाएँ हैं। आत्मा जड़-भौतिक में जन्मी नहीं, जन्म लेने की प्रक्रिया में है।

यह अपूर्ण सत्ता अपनी उलझी हुई, अस्तव्यस्त, अव्यवस्थित और अधिकतर प्रभावशून्य चेतना के साथ ऊपर की ओर उठने वाले प्रकृति के रहस्यमय उभार का लक्ष्य या उसकी उच्चतम ऊँचाई नहीं हो सकती। कोई और चीज़ है जिसे अभी ऊपर से नीचे लाना है। अभी हम उसे अपनी सीमाओं की दानवाकार दीवार की दरारों में से खण्डित झलकों के रूप में देख पाते हैं। या अभी कोई और चीज़ नीचे से विकसित होनी बाक़ी है जो मनुष्य की मानसिक चेतना के परदे के पीछे सो रही है। या क्षणिक दीप्तियों में थोड़ी-बहुत दीख जाती है; जैसे एक बार प्राण पत्थर और धातु के अन्दर तथा मन वनस्पति में और तर्कबुद्धि पाशविक स्मृति की गुफा में भावनाओं, इन्द्रियों और सहज वृत्ति के अपूर्ण यन्त्र के नीचे सोये हुए थे। अभी तक हमारे अन्दर कोई अनभिव्यक्त चीज़ है जिसे ऊपर से घेर लेने वाले प्रकाश द्वारा मुक्त करवाना है। हमारी गहराइयों में एक देव बन्दी है जो अपनी सत्ता में उस महत्तर देव के साथ एक ही है जो अतिमानसिक शिखरों से उतरने के लिए तैयार है। उस अवरोहण और जाग्रत् मिलन में हमारे भविष्य का रहस्य छिपा हुआ है।

मनुष्य की महानता इसमें नहीं है कि वह क्या है, बल्कि इसमें है कि वह किसे सम्भव बनाता है। उसकी महिमा यह है कि वह एक जीवित-जाग्रत् परिश्रम का बन्द स्थान और गुप्त कारख़ाना है जिसमें दिव्य कारीगर अतिमानवता को तैयार कर रहा है।

लेकिन उसे एक और भी महान् महानता में प्रवेश प्राप्त है। निम्नतर सृष्टि से भिन्न उसे आंशिक रूप से भागवत परिवर्तन का सचेतन शिल्पी होने दिया गया है। उसकी मुक्त स्वीकृति, उसकी समर्पित इच्छा और उसके सहयोग की ज़रूरत है ताकि उसके शरीर में वह महिमा उतर सके जो उसका स्थान लेगी। उसकी अभीप्सा अतिमानसिक स्रष्टा को धरती की पुकार है।

अगर धरती पुकारे और परम पुरुष उत्तर दें तो उस विशाल और महिमामय रूपान्तर का मुहूर्त अब भी हो सकता है।

CWSA खण्ड १२, पृ. १५७-१६०

शिक्षार्थी-अतिमानव

मधुर माँ, क्या मानव और अतिमानव के बीच कोई मध्यवर्ती अवस्थाएँ नहीं होंगी?

शायद अनेक होंगी।

मानव और अतिमानव? तुम नयी अतिमानसिक जाति की बात तो नहीं कर रहे, कर रहे हो क्या? क्या सचमुच तुम उसी की बात कर रहे हो जिसे *हम* अतिमानव कहते हैं, अर्थात्, मनुष्य, जो मानवीय ढंग से जन्मा है और अपनी भौतिक सत्ता का, जो उसे साधारण मानव जन्म के द्वारा मिली है, रूपान्तर करने की कोशिश कर रहा है? सोपान? अवश्य, असंख्य **आंशिक** उपलब्धियाँ होंगी। हर एक की क्षमता के अनुसार रूपान्तर का स्तर अलग-अलग होगा, और यह निश्चित है कि अतिमानव से मिलती-जुलती चीज़ तक पहुँचने से पहले न्यूनाधिक सफल या असफल प्रयास काफ़ी संख्या में होंगे, और ये ही लगभग सफल प्रयोगात्मक प्रयास होंगे।

वे सब जो अपनी साधारण प्रकृति पर विजय पाने की कोशिश करते हैं, जो उन गहनतर अनुभूतियों को भौतिक रूप में संसिद्ध करने की कोशिश करते हैं जो उन्हें दिव्य 'सत्य' के सम्पर्क में ले आयी हैं, जो अपनी दृष्टि 'परात्पर' और 'परम' की ओर मोड़ने के बजाय अपने अन्दर उपलब्ध चेतना के परिवर्तन को भौतिक रूप में, बाह्य रूप में संसिद्ध करने की कोशिश करते हैं वे सब शिक्षार्थी-अतिमानव हैं। और उनके प्रयास की सफलता में अनगिनत अन्तर हैं। हर बार जब हम कोशिश करते हैं कि साधारण व्यक्ति न बने रहें, साधारण जीवन न बितायें, अपनी गतिविधियों में, कार्य-कलापों और प्रतिक्रियाओं में दिव्य 'सत्य' को अभिव्यक्त करें, जब हम व्यापक अज्ञान द्वारा शासित न होकर उस 'सत्य' द्वारा शासित होते हैं, तब हम शिक्षार्थी-अतिमानव होते हैं और अपने प्रयासों की सफलता के अनुपात में, कम या अधिक, अच्छे शिक्षार्थी होते हैं, पथ पर कम या अधिक आगे बढ़े हुए।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ४४७

अतिमानव

अवतरण के बारे में, जिसे माताजी ने बाद में अतिमानव की चेतना का अवतरण बताया।

वह रात को धीरे-धीरे आया और आज सवेरे जागने पर मानों स्वर्णिम 'प्रभात' था, वातावरण इतना हलका था। शरीर को लगा: "यह सचमुच, सचमुच नया है।" एक स्वर्णिम प्रकाश, पारदर्शक और... सद्भावनापूर्ण। निश्चिति के अर्थ में "सद्भावनापूर्ण"—सामञ्जस्यपूर्ण निश्चिति। वह नया था। तो यह बात थी। जब मैं लोगों से "शुभ नव वर्ष" कहती हूँ तो मैं उन्हें वह बाँटती हूँ। और आज सवेरे मैंने अपना समय सहज रूप से "शुभ नव वर्ष, शुभ नव वर्ष" कहते-कहते बिताया। तो...।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. १५७

दिव्य शरीर

नवीन प्रारूप, दिव्य शरीर को, अब तक क्रमिक रूप से विकसित रूप को बनाये रखना होगा। उस प्रारूप के साथ निरन्तरता बनाये रखनी होगी जिसे प्रकृति अब तक विकसित करती रही है—एक ऐसी निरन्तरता जो मानव शरीर से दिव्य शरीर तक जाये, जिससे किसी अनभिज्ञेय के साथ सम्बन्ध-विच्छेद न हो जाये बल्कि उसके साथ एक उच्च निरन्तरता बन जाये जिसे उपलब्ध किया जा चुका है और आंशिक रूप से पूर्ण बनाया जा चुका है। मानव शरीर के कुछ भाग तथा उपकरण पर्याप्त रूप से इतने विकसित किये जा चुके हैं कि वे दिव्य जीवन की आवश्यकता पूरी कर सकें। उन्हें अपने रूप में बने रहना होगा, यद्यपि उन्हें और अधिक पूर्ण बनाना होगा, उनकी पहुँच तथा उपयोग की सीमाओं को, उनके दोषों को दूर करना होगा, संज्ञान तथा गत्यात्मक क्रिया की उनकी क्षमताओं को और बढ़ाना होगा। शरीर को ऐसी नयी शक्तियाँ अर्जित करनी होंगी जिन्हें हमारी वर्तमान मानवता सिद्ध करने की आशा नहीं कर सकती, उसका सपना भी नहीं देख सकती या कल्पना भी नहीं कर सकती। आविष्कृत उपकरणों तथा यन्त्रों के उपयोग द्वारा जो कुछ अब जाना जा सकता है, क्रियान्वित या सृजित किया जा सकता है उसका अधिकांश नये शरीर के द्वारा अपनी शक्ति से अथवा अन्तर्वासी आत्मन् द्वारा अपनी आध्यात्मिक

शक्ति से उपलब्ध किया जा सकता है। शरीर स्वयं अन्य शरीरों के साथ सञ्चार के नये साधन तथा प्रभाव-क्षेत्र, ज्ञान प्राप्त करने की नयी प्रक्रियाएँ, एक नवीन सौन्दर्य-बोध तथा स्वयं को और वस्तुओं को नियन्त्रित करने की नयी सामर्थ्य अर्जित कर सकता है। हो सकता है कि दूर को निकट बनाने और दूरी को समाप्त करने, शरीर के ज्ञानाधिकार से परे को जानने, क्रिया के क्षेत्र से अभी बाहर की वस्तु अथवा इसके क्षेत्र पर क्रिया करने, भौतिक ढाँचे के लिए आवश्यक स्थिरता की वर्तमान स्थिति में असम्भव लगने वाली सूक्ष्मता तथा नमनीयता को विकसित करने के लिए अपने ही गठन, तत्त्व या स्वाभाविक यान्त्रिकता में यह साधन को प्राप्त या रहस्य को उद्घाटित कर ले। ये सब तथा अन्य असंख्य सम्भावनाएँ प्रकट हो सकती हैं तथा शरीर एक ऐसा अमापनीय उत्कृष्ट उपकरण बन सकता है जिसकी सम्भावना की हम कल्पना तक नहीं कर सकते। हो सकता है कि पहले बोधगम्य सत्य-चेतना से अतिमानस की आरोही श्रेणियों की उच्चतम ऊँचाई तक विकास हो और यह स्वयं वास्तविक अतिमानस की सीमाओं से गुज़रे जहाँ यह एक ऐसे जीवन के व्यक्त रूपों को आभासित करे, विकसित करे, चित्रित करे जिसमें परम शुद्ध सत्, चित् तथा आनन्द का स्पर्श हो जिनसे सत्, तपस् की गत्यात्मकता, आनन्द की महिमा और माधुर्य, निरपेक्ष तत्त्व तथा सर्व-सर्जनात्मक आनन्द के उच्चतम सत्य के लोकों का निर्माण हुआ है। भौतिक सत्ता का रूपान्तरण प्रगति की इस सतत रेखा का अनुसरण कर सकता है तथा दिव्य शरीर पृथ्वी पर आत्माभिव्यक्त करते हुए आत्मन् की कुछ इसी प्रकार की उच्चतम महानता तथा महिमा को प्रतिबिम्बित अथवा प्रतिरूपायित कर सकता है।

CWSA खण्ड १३, पृ. ५५६-५७ **श्रीअरविन्द**

जिस सत्य को जानने के लिए मनुष्य ने व्यर्थ की खोज की है वह नयी जाति का, कल की जाति का, अतिमानव का जन्मसिद्ध अधिकार होगा।

सत्य के अनुसार जीना उसका जन्मसिद्ध अधिकार होगा।

आओ, हम 'नयी सत्ता' के आने की तैयारी के लिए अपना अच्छे-से-अच्छा प्रयास करें। मन को निश्चल-नीरव होना चाहिये, उसका स्थान सत्य चेतना—ब्योरों की चेतना के साथ समस्वर समग्र की चेतना—ले ले। ***श्रीमाँ***

मानवता तथा नूतन सर्जन

अतिमानसिक जहाज़

(१९ फ़रवरी १९५८ को क्रीड़ांगण में बुधवार की सम्मिलित कक्षा में श्रीमाँ ने ३ फ़रवरी की अपनी यह अनुभूति पढ़ कर सुनायी थी।)

मैंने अपने-आपको एक बहुत बड़े जहाज़ में पाया जो उस स्थान का प्रतिनिधित्व कर रहा था जहाँ यह कार्य सम्पन्न किया जा रहा था। जहाज़ एक शहर के जितना बड़ा था, पूरी तरह से सुव्यवस्थित, और निश्चित रूप से काफ़ी समय से वह सुचारु रूप से सञ्चालित हो रहा था, क्योंकि उसकी व्यवस्था पूरी तरह से विकसित थी। यह वह स्थान है जहाँ अतिमानसिक जीवन जीने के लिए नियुक्त व्यक्तियों को प्रशिक्षण मिल रहा था। ये व्यक्ति (या कम-से-कम इनकी सत्ता का एक भाग) अतिमानसिक रूपान्तरण के दौर से गुज़र चुका था, क्योंकि स्वयं जहाज़ और उस पर के सभी व्यक्ति न भौतिक थे न सूक्ष्म-भौतिक, न प्राणिक थे न ही मानसिक: वह अतिमानसिक तत्त्व था, जड़-भौतिक जगत् के सबसे नज़दीक का तत्त्व, जिसकी अभिव्यक्ति सबसे पहले होती है। प्रकाश लाल तथा सुनहले रंग का मिश्रण था, प्रकाशमान् नारंगी रंग का इकसार तत्त्व था। वहाँ सब कुछ ऐसा ही था—प्रकाश इसी रंग का था, लोग ऐसे ही थे—सब इसी रंग के थे, हाँ, उनमें छटाएँ विभिन्न थीं, बहरहाल, वे छटाएँ ही उन्हें एक-दूसरे से अलग कर रही थीं। कुल मिला कर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों एक छायाहीन जगत् हो: छटाएँ थीं लेकिन परछाइयाँ नहीं थीं। सारा वातावरण हर्ष, शान्ति, व्यवस्था से परिप्लावित था, सब कुछ सरल और शान्त तरीक़े से कार्यरत था। साथ ही, मैं शिक्षा के सभी ब्योरों को भी देख पा रही थी, सभी क्षेत्रों में वह प्रशिक्षण चल रहा था जिसके द्वारा जहाज़ पर के लोगों को तैयार किया जा रहा था।

यह विशाल जहाज़ अतिमानसिक जगत् के तट पर पहुँचा ही था, और पहले दल के लोग, जो अतिमानसिक जगत् के भावी निवासी बनने वाले थे, किनारे पर उतरने-उतरने को थे। इस प्रथम दल के अवतरण के लिए सभी कुछ व्यवस्थित कर दिया गया था। अमुक संख्या में बहुत लम्बी-लम्बी सत्ताएँ घाट पर तैनात थीं। वे मानव सत्ताएँ नहीं थीं और पहले कभी

उन्होंने मनुष्य का रूप नहीं लिया था। न ही वे अतिमानसिक जगत् की स्थायी वासिनी थीं। उन्हें ऊपर से नियुक्त किया गया था और वहाँ घाट पर जहाज़ के उतरने का पूरा बन्दोबस्त उन्हीं के हाथों में था। शुरू से अन्त तक इस सम्पूर्ण कार्य की ज़िम्मेदारी मुझी पर थी। मैंने ही सबको विभिन्न दलों में बाँटा था। मैं जहाज़ के पुल पर खड़ी थी, एक-एक करके दल को आगे आने के लिए बुला रही थी और तट पर उतरने में उनकी सहायता कर रही थी। ऐसा लगता था कि वे लम्बी सत्ताएँ तट पर उतरने वालों की पहले जाँच कर रही थीं, जो एकदम तैयार थे उन्हें उतरने की अनुमति दे रही थीं और उन्हें जहाज़ में वापस भेज रही थीं जो तैयार नहीं थे और जिन्हें अपना प्रशिक्षण अभी जारी रखना था। वहाँ खड़े होकर सबको देखते समय, मेरी सत्ता का एक भाग, जो यहाँ से आया था, बहुत अधिक रस लेने लगा : वह देखना चाहता था, उन सभी लोगों को पहचानना चाहता था, यह जानना चाहता था कि वे किस तरह से बदले और यह पता लगाना चाहता था कि किन्हें तुरन्त तट पर उतार लिया गया और किन्हें जहाज़ पर उनका प्रशिक्षण जारी रखने के लिए रहना पड़ा। कुछ देर बाद, जब मैं निरीक्षण कर रही थी, मुझे ऐसा आभास हुआ मानों कोई मुझे पीछे खींच रहा हो और यह कि मेरे शरीर को यहाँ की किसी चेतना या किसी व्यक्ति ने जगा दिया हो—मैंने विरोध किया : 'नहीं, नहीं, अभी नहीं! अभी नहीं! मैं देखना चाहती हूँ कि वहाँ कौन है!' मैं इसे देख रही थी और बहुत तीव्र रस के साथ सब कुछ नोट कर रही थी... यह तब तक चलता रहा जब तक कि अचानक, घड़ी ने तीन का घण्टा नहीं बजाया, इसने मुझे एकदम ज़ोर से झटका देकर उठा दिया। मुझे अचानक अपने शरीर में वापस गिर जाने का एहसास हुआ। मैं एक सदमे के साथ लौटी, लेकिन चूँकि मुझे इतनी अचानक बुला लिया गया था, मेरी सारी स्मृति अब तक अक्षुण्ण थी। मैं शान्त बनी रही और अब तक मैं उस सारी अनुभूति को दोबारा जी सकती हूँ, उसे सुरक्षित बनाये रख सकती हूँ।

जहाज़ पर वस्तुओं की प्रकृति भी वैसी नहीं थी जैसी हम पृथ्वी पर जानते हैं; उदाहरण के लिए, कपड़े धागे इत्यादि से नहीं बने थे, और जो चीज़ कपड़े के जैसी दीख रही थी वह उत्पादन नहीं था, वह शरीर का ही एक हिस्सा था, जो उस समान तत्त्व से बना था जो विभिन्न रूप और

आकार ग्रहण करता है। उसमें लोच-जैसी कोई चीज़ थी। जब बदलना होता तो वह कृत्रिम या बाहरी साधनों द्वारा नहीं बल्कि आन्तरिक कर्म, चेतना की उस क्रिया द्वारा बदला जाता जो उस तत्त्व को आकार या आभास देती है। जीवन ने अपने रूप और आकार बनाये। सभी चीज़ों में एक ही तत्त्व था; आवश्यकताओं या व्यवहार करने के अनुसार वह तत्त्व वस्तु के स्पन्दन बदल देता था।

जो लोग अधिक प्रशिक्षण पाने के लिए वापस भेज दिये गये वे एक समान रंग के नहीं थे; उनके शरीर पर सलेटी रंग के धब्बे-से थे, उस तत्त्व के जो पृथ्वी के तत्त्व से मिलता-जुलता था। वे धुँधले थे, मानों उनमें प्रकाश व्याप्त नहीं था या वे पूरी तरह से रूपान्तरित नहीं हुए थे। वे सब जगह नहीं, बस इधर-उधर धबीले थे।

तट पर की लम्बी सत्ताएँ समान रंग की नहीं थीं, कम-से-कम उनके अन्दर यह नारंगी छटा नहीं थी, वे अधिक हलके रंग की, अधिक पारदर्शक थीं। उनके शरीर के एक हिस्से के सिवाय, बस उनके आकार की रूप-रेखा ही दिखायी दे रही थी। वे बहुत लम्बी थीं, उनकी रचना कंकाल-जैसी नहीं थी, और वे अपनी आवश्यकतानुसार कोई भी आकार ले सकती थीं। केवल उनकी कमर से उनके पैरों तक उनके अन्दर स्थायी घनता थी, जिसे बाक़ी शरीर में अनुभव नहीं किया जा रहा था। उनका रंग कहीं ज़्यादा पीला था, जिसमें लालिमा नाम-मात्र की थी, वह अधिक सुनहरे या सफ़ेद रंग की ओर झुका हुआ था। सफ़ेद रंग के कुछ हिस्से पारभासी थे, लेकिन वे पूरी तरह से पारदर्शक नहीं थे, बल्कि कम घने थे, नारंगी तत्त्व से अधिक सूक्ष्म थे।...

ठीक तभी जब मुझे वापस बुलाया गया, जब मैं कह रही थी, 'अभी नहीं...,' मुझे स्वयं अपनी एक उड़ती हुई झलक मिली, अतिमानसिक जगत् में अपने रूप-आकार की झलक। मैं इन लम्बी सत्ताओं और जहाज़ के प्राणियों का मिश्रण थी। मेरे शरीर का ऊपरी हिस्सा, विशेषकर मेरा सिर एक सफ़ेद-से रंग की मात्र छाया-आकृति था जिसके कोनों पर फुँदने लगे थे। नीचे, पैरों तक आते-आते रंग जहाज़ पर के लोगों के रंग-जैसा हो गया, या दूसरे शब्दों में कहें तो वह नारंगी रंग था; जितना ऊपर जाओ उतना वह पारभासी और सफ़ेद होता गया और लाल बुझ गया। सिर मात्र

छाया-आकृति था जिसके केन्द्र में जाज्वल्यमान सूर्य था; उसमें से प्रकाश की किरणें फूट रही थीं जो उस इच्छा की क्रिया थीं।

३ फ़रवरी १९५८ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

मानवजाति तथा अतिमानसिक सृजन की परतें

सवेरे से शाम तक श्रीअरविन्द यहाँ मौजूद थे।

हाँ, और एक घण्टे से भी ज़्यादा के लिए उन्होंने मुझे उस जीवन में रखा जो मानवजाति और मानवजाति के विभिन्न स्तरों के बीच नयी या अतिमानसिक सृष्टि के सम्बन्ध का जीवित और ठोस दृश्य था। वह अद्‌भुत रूप से स्पष्ट, जीवन्त और ठोस था...। वह सारी मानवजाति थी जो अब पूरी तरह पाशविक नहीं है, जिसने मानसिक विकास से लाभ उठाया है और अपने जीवन में एक तरह का सामञ्जस्य पैदा किया है—एक ऐसा सामञ्जस्य जो प्राणिक, कलात्मक और साहित्यिक है—और उसमें रहने वालों का बहुत बड़ा भाग उससे सन्तुष्ट है। उन्होंने एक प्रकार का सामञ्जस्य पा लिया है और उसके अन्दर वे ऐसा जीवन जीते हैं जैसा सभ्य परिस्थितियों में हुआ करता है, यानी, ऐसा जीवन जो कुछ-कुछ सुसंस्कृत होता है, जिसमें परिष्कृत रुचियाँ और परिष्कृत आदतें होती हैं। उस सारे जीवन में एक विशेष सौन्दर्य होता है जिसमें वे आराम से रहते हैं। जब तक कोई अनर्थ ही न हो जाये वे प्रसन्न और सन्तुष्ट रहते हैं, जीवन से सन्तुष्ट रहते हैं। ऐसे लोग आकर्षित हो सकते हैं (क्योंकि उनकी अभिरुचि सुसंस्कृत है और वे बौद्धिक दृष्टि से विकसित हैं), वे नयी शक्तियों से, नयी चीज़ों से, भावी जीवन से आकर्षित हो सकते हैं; उदाहरण के लिए, वे मानसिक रूप से, बौद्धिक रूप से श्रीअरविन्द के शिष्य बन सकते हैं। लेकिन उन्हें भौतिक दृष्टि से बदलने की ज़रा भी ज़रूरत नहीं मालूम होती; और अगर वे बाधित किये जायें तो पहले तो यह असामयिक और अनुचित होगा और फिर व्यर्थ ही में उनके जीवन में अव्यवस्था और गड़बड़ पैदा कर देगा।

यह बहुत स्पष्ट था।

और फिर कुछ ऐसे थे—विरले व्यक्ति—जो रूपान्तर के लिए तैयारी करने के लिए, नयी शक्ति को खींचने के लिए, 'जड़-द्रव्य' को अनुकूल बना लेने और अभिव्यक्ति के साधन खोजने के लिए आवश्यक प्रयास करने

को तैयार थे। ये लोग श्रीअरविन्द के योग के लिए तैयार हैं। ये संख्या में बहुत ही कम हैं। ऐसे लोग भी हैं जो यज्ञ की भावना से भरे हैं। वे कठोर, कष्टप्रद जीवन के लिए भी तैयार हैं यदि वह इस भावी रूपान्तर की तरफ़ ले जाये या उसमें सहायता दे। लेकिन उन्हें कभी, किसी प्रकार, दूसरों को प्रभावित करने की कोशिश नहीं करनी चाहिये, उन्हें अपने प्रयास में भाग लेने के लिए मजबूर नहीं करना चाहिये; यह बिलकुल अनुचित होगा—केवल अनुचित ही नहीं, बल्कि एकदम भद्दा भी। क्योंकि उससे वैश्व लय और गति, या कम-से-कम पार्थिव गति में परिवर्तन आ जायेगा और यह सहायता करने की जगह संघर्ष उत्पन्न करेगा और इसकी परिणति होगी विशृंखलता में।

लेकिन वह इतना जीवन्त था, इतना वास्तविक था कि मेरा सारा मनोभाव (कैसे कहा जाये?—एक निष्क्रिय मनोभाव जो सक्रिय संकल्प का परिणाम नहीं है), काम में अपनायी मेरी सारी स्थिति ही बदल गयी। और यह एक शान्ति लायी है—एक शान्ति, स्थिरता और विश्वास जो बिलकुल निर्णायक है। एक निर्णायक परिवर्तन आया है। और जो कुछ पहले की स्थिति में दुराग्रह, भद्दापन, निश्चेतना, सब प्रकार की शोचनीय वस्तुएँ मालूम होती थीं, वह सब ग़ायब हो गया है। यह मानों एक महान् वैश्व 'लय' का दर्शन था जिसमें हर चीज़ अपना स्थान ले लेती है और...हर चीज़ बिलकुल ठीक है। और रूपान्तर के लिए प्रयास एक छोटी-सी संख्या तक सीमित रह कर *ज़्यादा* मूल्यवान् और उपलब्धि के लिए अधिक सशक्त बन जाता है। यह ऐसा है मानों उन लोगों के लिए चुनाव हो गया हो जो नयी सृष्टि के पुरोगामी होंगे। और "प्रसार", "तैयारी" या "जड़-द्रव्य के मन्थन" की बातें... बचकानी हैं। यह मनुष्य की बेचैनी है।

वह एक सौन्दर्य का दर्शन था, बड़ा भव्य, शान्त और मुस्कुराता हुआ। ओह!... वह भरा हुआ था, सचमुच भागवत 'प्रेम' से भरा हुआ। और वह भागवत 'प्रेम' नहीं जो "क्षमा करता है"—नहीं, यह वैसा बिलकुल नहीं था, बिलकुल नहीं! हर चीज़ थी अपने स्थान पर, अपनी आन्तरिक लय को यथासम्भव अधिक-से-अधिक चरितार्थ करती हुई।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. २४-२६

अतिमानसिक प्रभाव-तले मानवजाति

यह पौधों और पौधों के सौन्दर्य के सहज अन्तर्दर्शन के बाद आया (यह बहुत अद्‌भुत चीज़ है), फिर आये बड़े सामञ्जस्यपूर्ण जीवनवाले पशु (जब तक मनुष्यों का हस्तक्षेप न हो), और यह सब कुछ अपने ठीक स्थान पर था। तब सच्ची मानवजाति मानवजाति के रूप में आयी, यानी, मानसिक सन्तुलन जितने सौन्दर्य, सामञ्जस्य, सौम्यता, जीवन-लालित्य, जीने के रस को—सौन्दर्य में जीने के रस को—रच सकता था उसे लिये हुए आयी। स्वाभाविक था कि जो कुछ भद्दा, नीच और गँवारू है उसे दबा दिया गया था। वह एक सुन्दर मानवजाति थी, मानवजाति अपनी पराकाष्ठा पर, लेकिन सुन्दर थी, और मानवजाति बनी रहने में पूर्णतः सन्तुष्ट थी क्योंकि वह सामञ्जस्य के साथ रहती थी। यह शायद इस बात की प्रतिश्रुति भी थी कि नयी सृष्टि के प्रभाव-तले लगभग सारी मानवजाति कैसी हो जायेगी। मुझे ऐसा लगा कि अतिमानसिक चेतना मानवजाति को ऐसा बना सकती है। यहाँ तक कि इसमें मानवजाति ने पशुजाति का क्या किया उसके साथ तुलना भी थी। स्वाभाविक है कि यह बहुत ज़्यादा मिला-जुला प्रभाव है पर चीज़ें ज़्यादा पूर्ण बनायी गयी हैं, ज़्यादा अच्छी की गयी हैं और ज़्यादा अच्छी तरह उपयोग में लायी गयी हैं। मन के प्रभाव के तले पशु-योनि कुछ और ही बन गयी है, स्वाभाविक है कि वह है तो कुछ मिश्रित-सी चीज़ क्योंकि मन अपूर्ण था। इसी तरह भली-भाँति सन्तुलित लोगों के बीच सामञ्जस्यपूर्ण मानवता के उदाहरण थे और इससे ऐसा लगता था कि अतिमानसिक प्रभाव के अधीन मानवजाति क्या हो सकती है।

लेकिन, यह अभी बहुत दूर है। तुम्हें इसकी तुरन्त आशा न करनी चाहिये—यह बहुत दूर की बात है।

स्पष्टतः, अभी यह एक संक्रमण-काल है जो काफ़ी लम्बे समय तक रह सकता है और है भी कष्टदायक। कभी-कभी इस कष्टदायक प्रयास (बहुधा कष्टदायक) की क्षतिपूर्ति, हमें जिस लक्ष्य तक पहुँचना है उसके स्पष्ट दर्शन से, उस लक्ष्य के स्पष्ट दर्शन से जिसे हम ज़रूर प्राप्त **करेंगे** : एक आश्वासन से, हाँ, निश्चिति से होती है। लेकिन वह कुछ ऐसी चीज़ होगी जिसमें मानसिक जीवन की समस्त भ्रान्ति, विकृति, सारी कुरूपता को निकाल बाहर करने की शक्ति होगी—और तब वह ऐसी मानवजाति होगी

जो बहुत प्रसन्न, मानव होने से बहुत सन्तुष्ट होगी, जिसे मनुष्य से अलग कुछ और बनने की ज़रूरत महसूस न होगी, लेकिन उसमें मानव-सौन्दर्य और मानव-सामञ्जस्य होगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. २६-२७

श्रेष्ठतर मानवजाति

मैं देख रही थी, मैंने इसे बिलकुल ठोस रूप में देखा। उन लोगों के अतिरिक्त जो रूपान्तर और अतिमानसिक सिद्धि की तैयारी करने के योग्य हैं और जिनकी संख्या निश्चित ही बहुत सीमित है, जनसाधारण के बीच अधिकाधिक एक श्रेष्ठतर मानवजाति का विकास होना चाहिये जिसकी भविष्य के, या निर्मित होती हुई अतिमानसिक सत्ता के प्रति वही वृत्ति हो जैसी, उदाहरण के लिए, पशुओं की मनुष्य के प्रति है। जो लोग रूपान्तर के लिए काम कर रहे हैं और जो उसके लिए तैयार हैं, उनके अतिरिक्त, एक उच्चतर मध्यस्थ मानवजाति होनी चाहिये जिसने अपने अन्दर या जीवन में, 'जीवन' के साथ सामञ्जस्य पा लिया है—यह *मानव सामञ्जस्य*—जिसे किसी "ऐसी वस्तु" के लिए जो इतनी ऊँची है कि वह उसे पाने की कोशिश भी नहीं करती, उसके लिए पूजा, भक्ति, निष्ठा-भरे निवेदन का भाव होता है। वह उसकी पूजा करता है, उसके प्रभाव और रक्षण की ज़रूरत महसूस करता है—उसके प्रभाव के अधीन रहने की ज़रूरत और उसके रक्षण में रहने का आनन्द। यह बहुत स्पष्ट था। लेकिन यह यातना नहीं, जो चीज़ तुमसे बच निकलती है उसे चाहने की पीड़ा नहीं क्योंकि—क्योंकि उसे पाना अभी तुम्हारी नियति में नहीं बदा। उसके लिए जिस परिमाण में प्रयास चाहिये उसके लिए तुम्हारा जीवन अभी तैयार नहीं है। और उसी के कारण अव्यवस्था और कष्ट पैदा होते हैं।

उदाहरण के लिए, ठोस चीज़ों में से एक ऐसी है जो इस समस्या को भली-भाँति सामने लाती है : मानवजाति में सेक्स का आवेग है जो बिलकुल स्वाभाविक, सहज और मैं यह भी कह सकती हूँ कि उचित है। यह आवेग अपने-आप स्वाभाविक और सहज रूप में पाशविकता के साथ-साथ ग़ायब हो जायेगा। और भी बहुत-सी चीज़ें ग़ायब हो जायेंगी, उदाहरण के लिए, खाने की ज़रूरत और हम अभी जिस तरह सोते हैं शायद उस तरह

सोने की ज़रूरत भी, लेकिन उच्चतर मानवजाति में... आनन्द तो बहुत बड़ा शब्द है, हम कह सकते हैं कि जो प्रसन्नता या हर्ष का स्रोत बन कर चलती चली आ रही है वह सेक्स की क्रिया तब बिलकुल न रहेगी जब 'प्रकृति' के कार्यों में इस तरीक़े से सृजन करने की ज़रूरत न रहेगी। अतः, जीवन के हर्ष के साथ सम्बन्ध बनाने की क्षमता एक क़दम ऊपर उठ जायेगी या कोई अन्य दिशा ले लेगी। लेकिन प्राचीन आध्यात्मिक अभीप्सुओं ने सिद्धान्त के रूप में—सेक्स के निषेध की—जो कोशिश की थी वह एक वाहियात-सी बात है। यह उन्हीं लोगों के लिए हो सकता है जो उस स्तर के परे जा चुके हैं और जिनमें पाशविकता नहीं बची। इसे बिना प्रयास और बिना संघर्ष के स्वाभाविक रूप से झड़ जाना चाहिये। इसे संघर्ष और द्वन्द्व का केन्द्र बनाना हास्यास्पद है। जब चेतना मानवीय नहीं रहती तो यह अपने-आप झड़ जाती है। यह भी एक ऐसा संक्रमण है जो कुछ कष्टकर हो सकता है, क्योंकि संक्रमण की सत्ताएँ हमेशा अस्थिर सन्तुलन में रहती हैं; लेकिन व्यक्ति के अन्दर एक प्रकार की ज्वाला होती है, एक आवश्यकता होती है जो इसे कष्टकर नहीं बनाती—यह कष्टकर प्रयास नहीं रहता, एक ऐसी चीज़ होती है जिसे व्यक्ति मुस्कान के साथ कर सकता है। लेकिन जो लोग इस संक्रमण के लिए तैयार नहीं हैं उन पर इसे लादने की कोशिश करना विवेकशून्यता है।

यह सामान्य-सी बात है। वे मनुष्य हैं, उन्हें मनुष्य न होने का ढोंग नहीं करना चाहिये।

जब सहज रूप में आवेग तुम्हारे लिए असम्भव हो जाये, जब तुम यह अनुभव करो कि यह एक कष्टकर चीज़ है और तुम्हारी आन्तरिक आवश्यकता के विपरीत है, तब यह आसान हो जाता है; और तब तुम बाहर से इन बन्धनों को काट सकते हो और यह ख़तम हो जाता है।...

भोजन के बारे में भी यही बात है। यही बात होगी। जब पाशविकता झड़ जायेगी तो भोजन की नितान्त आवश्यकता भी झड़ जायेगी। और शायद एक संक्रमण होगा जब व्यक्ति को क्रमशः कम-से-कम भौतिक भोजन की आवश्यकता होगी। उदाहरण के लिए, जब तुम फूल सूँघते हो तो उनसे पोषण मिलता है। मैंने यह देखा है, तुम ज़्यादा सूक्ष्म रीति से अपना पोषण कर लेते हो। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ११, पृ. २८-२९

दैनन्दिनी

जून

१. केवल तभी जब हम परेशान नहीं होते, हम हमेशा उचित वस्तु उचित समय तथा उचित तरीक़े से कर सकते हैं।

२. सचमुच शान्ति की बहुत आवश्यकता है—शान्ति के बिना सरल-से-सरल चीज़ भी एकदम से बात का बतंगड़ बना देती है।

३. हर पल अपना अच्छे-से-अच्छा करना और परिणाम भागवत निर्णय पर छोड़ देना, यही है शान्ति, सुख, बल, प्रगति तथा अन्तिम पूर्णता की ओर जाने वाला निश्चिततम मार्ग।

४. मेरे अन्दर जो कुछ सचेतन है वह अबाध रूप से तेरा है और मैं थोड़ा-थोड़ा करके और हमेशा ज़्यादा अच्छी तरह से, अभी तक अँधेरी आधारशिला, अवचेतना को जीतने की कोशिश करूँगी।

५. हे प्रेम, दिव्य प्रेम, सारे जगत् में फैल जा, जीवन को पुनरुज्जीवित कर, बुद्धि को प्रदीप्त कर, अहंकार की बाधाओं को तोड़ डाल, अज्ञान की बाधाओं को छितरा दे, पृथ्वी के राजाधिराज की तरह देदीप्यमान होकर चमक।

६. तेरे परम प्रकाश की दीप्ति उस समस्त अन्धकार में से फूट पड़े जो सारी धरती पर छा गया है।

७. समस्त भय को निकाल बाहर फेंक देना चाहिये और तुम्हारे अन्दर पूरा विश्वास होना चाहिये कि भागवत सुरक्षा उपस्थित है और तुम्हें केवल उसे याद रखना चाहिये ताकि वह कार्य कर सके।

८. अवसाद और निराशा हमेशा ग़लत होते हैं—उनसे कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं, श्रद्धा और विश्वास उन्हें जीतने में सहायता करते हैं।

९. सबसे पहले सचेतन होना चाहिये। हम अपनी सत्ता के एक नगण्य से भाग में सचेतन हैं, इसके अधिकांश भाग में हम अचेतन ही हैं। यह अचेतनता ही हमें अपनी प्रकृति के अपरिमार्जित भाग के साथ नीचे की ओर बाँधे रहती है और उसके परिवर्तन या रूपान्तर को

रोकती है।

१०. हमारी साधना का ध्येय मनुष्यजाति का कल्याण नहीं है, हमारी साधना का हेतु है, भगवान् की अभिव्यक्ति।

११. भगवान् के लिए स्नेह : एक मधुर, विश्वासपूर्ण कोमलता जो अपने-आपको अविरत रूप से भगवान् के अर्पण करती है।

१२. आत्म-नियन्त्रण के बिना कोई जीवन सफल नहीं हो सकता।

१३. हर परिस्थिति और हर घटना के सामने यदि मन अधिक शान्त रह सके तो धैर्य अधिक आसानी से बढ़ सकेगा।
शान्ति और आन्तरिक नीरवता में तुम अधिकाधिक मेरी सतत उपस्थिति के बारे में सचेतन हो सकोगे।

१४. जिस भगवान् की हम उपासना करते हैं वह न केवल दूरस्थ, विश्व से परे की वास्तविकता है बल्कि एक आधी ढँकी हुई अभिव्यक्ति है जो यहाँ विश्व में हमारे निकट और हमारे सामने उपस्थित है।

१५. ऐसा हो कि अधिकाधिक सतत तथा सर्वांगीण रूप से शान्ति तुम्हारे अन्दर अभिव्यक्त हो।

१६. हे प्रभो, मुझे पूर्ण निस्स्वार्थता की शान्ति प्रदान कर, ऐसी शान्ति जो तेरी उपस्थिति को प्रभावकारी बनाये, तेरे हस्तक्षेप को प्रभावकारी बनाये, ऐसी शान्ति दे जो समस्त दुर्भावना और समस्त अन्धकार पर सदा विजेता होती है।

१७. ... मेरा हृदय शान्त है, मेरा विचार अधीरता से मुक्त है और मैं अपने-आपको बच्चे के मुस्कुराते हुए विश्वास के साथ तेरी इच्छा के सुपुर्द करती हूँ।

१८. अपने दोष ढूँढ़ लेना एक उपलब्धि है। यह ऐसा है मानों ज्योति की बाढ़ अन्धकार के उस छोटे-से बिन्दु के स्थान पर आ गयी है जिस अन्धकार को अभी-अभी भगाया गया है।

१९. इस भ्रम के संसार को, इस निराशाजनक दुःस्वप्न को भगवान् ने अपनी परम सद्वस्तु प्रदान की है और जड़-द्रव्य के हर अणु में उनकी शाश्वतता का कुछ अंश है।

२०. पहले माँ से यह अभीप्सा और प्रार्थना करो कि तुम्हारा मन अचञ्चल हो, तुम्हारे अन्दर शुद्धि, स्थिरता और शान्ति का निवास हो, तुम्हारी

चेतना जाग्रत् और तुम्हारी भक्ति प्रगाढ़ हों, समस्त अन्तर और बाह्य की कठिनाइयों का मुक़ाबला करने और इस योग में अन्त तक जाने के लिए तुम्हें आध्यात्मिक बल प्राप्त हो। —श्रीअरविन्द

२१. हर नयी उषा एक नयी प्रगति की सम्भावना लेकर आती है।

२२. भगवान् के प्रति अपने समर्पण में सच्चे और सम्पूर्ण बनो तो तुम्हारा जीवन सामञ्जस्यपूर्ण और सुन्दर बन जायेगा।

२३. प्रेम के द्वारा सृष्टि भगवान् की ओर उठती है और प्रत्युत्तर में भागवत प्रेम और भागवत कृपा सृष्टि से मिलने के लिए नीचे की ओर झुकते हैं।

२४. हम लक्ष्य पर जितना अधिक एकाग्र होते हैं, उतना ही अधिक वह खिलता और सुनिश्चित होता जाता है।

२५. भगवान् की सहायता के बिना किसी भी व्यक्ति के लिए साधना करना सम्भव न होता। लेकिन सहायता हमेशा उपस्थित रहती है।

२६. मैं तुम्हारी सहायता और रक्षा के लिए सदैव तुम्हारे साथ हूँ। व्यर्थ की कल्पनाओं को अपने ऊपर शासन मत करने दो। शान्ति वहाँ है, तुम्हारे हृदय की गहराई में, उसी पर एकाग्र होओ, और तुम्हें वह प्राप्त होगी।

२७. तुम जो कुछ हो, तुम जो कुछ करो, उस सबको सच्चाई के साथ समर्पित करना साधना की दृष्टि से ध्यान की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली है।

२८. जब तुम सचेतन हो और सहयोग दो और वास्तव में जो करना चाहिये उसे सचेतन रूप से करते चलो तो प्रगति बहुत अधिक तेज़ी से होती है।

२९. अगर तुम समय-लाभ करना चाहते हो तो एकाग्र होना सीखो। ध्यान देकर काम करने से ही व्यक्ति तेज़ी से काम कर सकता है और काम ज़्यादा अच्छा भी होता है।

३०. निश्चय ही हमें शान्ति और सामञ्जस्य की चाह करनी चाहिये और उसके लिए यथासम्भव अधिक-से-अधिक काम करना चाहिये—लेकिन उसके लिए उत्तम कार्य-क्षेत्र हमेशा हमारे अन्दर ही होता है।

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

नारियों के लिए सलाह

अपने आस-पास के वातावरण में परिवर्तन लाने के लिए दो चीज़ें ज़रूरी हैं। पहली यह कि तुम्हारा घर सुव्यवस्थित हो। मैंने माताजी के बारे में यह चीज़ देखी है। एक बार मैंने वे चीज़ें देखीं जिन्हें वे जापान से लायी थीं, यानी वे लगभग पचास वर्ष पुरानी थीं। मुहर, लाख आदि अपने उचित स्थान पर थीं। वे उन चीज़ों को दो-तीन वर्ष के बाद खोल कर एक बार उनका उपयोग किया करती होंगी। एक बार किसी चीज़ को निकालते समय उन्होंने मुझसे कहा था कि अगर हम अपव्यय को रोक सकें तो हम करोड़पति बन सकते हैं। हम हर चीज़ का अपव्यय करते हैं और वे किसी भी चीज़ का अपव्यय न करती थीं। जब कोई पारसल आता था तो वे उसे खोल कर सुतली को रख लेती थीं ताकि वह बाद में काम आ सके। रैपिंग पेपर को भी हाथ से बने काग़ज़ के कारख़ाने में भेज देती थीं ताकि उससे नया काग़ज़ बन सके या वह किसी और काम में आ सके। अगर हम चीज़ों का अपव्यय न करें तो संसार में चीज़ों की कमी नहीं है, सबके लिए पर्याप्त चीज़ें होंगी। तुम अपने पति की जो आदतें डाल दोगी वही बच्चों में आयेंगी। तुम्हारा जैसा जीवन होगा औरों का जीवन भी उसी के अनुरूप होगा। आज न सही कल सही, यह बस समय का सवाल है, इसमें धीरज ज़रूरी है। लेकिन अगर स्वयं स्त्री का जीवन ऐसा न हो तो और कौन उसका अनुकरण करेगा? तो सबसे पहली चीज़ तो हुई, अपव्यय को बन्द करो।

दूसरी चीज़ है, अपनी अन्तर्निहित उत्तम क्षमता, अपने पति की उत्तम क्षमता और अपने बच्चों की उत्तम क्षमता को पहचानना, अपने इर्द-गिर्द की सम्भावनाओं को जानना और अपने साथियों को लक्ष्य की ओर बढ़ने में सहायता देना। बहुत सहिष्णु बनो, उनकी बहुत सहायता करो क्योंकि भगवान् के प्रति, अपने परिवेश और उससे भी परे की वस्तु के प्रति यही तुम्हारा कर्तव्य है। तुम अपने अच्छे-से-अच्छे रूप को कैसे विकसित कर सकती हो, अपने साथियों में उसे कैसे बढ़ा सकती हो? अगर तुम उस

चेतना में रह सको तो वह अपने-आप विकसित होगी। अगर तुम उस चेतना में रहो, भगवान् का यन्त्र बन कर रहो, अपने अहंकार को अपदस्थ कर दो, अगर तुम यह भाव हटा दो कि सब कुछ मैं कर रही हूँ बल्कि आह्वान करो कि हे भगवन्, आप ही मेरे द्वारा कार्य करें, मेरे द्वारा बोलें, मेरी आँखों से देखें, मेरे कानों से सुनें तो स्वयं यह त्याग ही तुम्हारे अन्दर और तुम्हारे आस-पास के लोगों में परिवर्तन ले आयेगा।

मैं तुम्हें अपने अनुभव से बतलाता हूँ कि हम जब कभी तेज़ी में काम करते हैं—वह चाहे जितना अच्छा प्रतीत होता है—उसका परिणाम कभी सन्तोषजनक नहीं होता। लेकिन अगर हम केन्द्रित रहें तो परिस्थिति चाहे जितनी कठिन क्यों न हो, परिणाम बहुत अच्छा होगा। बन्द द्वार अपने-आप खुल जायेंगे और हर चीज़ बदल जायेगी। अपनी वर्तमान चेतना में कार्य न करो। हमेशा वर्तमान समय की अपनी अधिक-से-अधिक ऊँची चेतना के साथ काम करो। तुम अपनी इस उच्चतम चेतना की पहुँच को हमेशा बढ़ा सकते हो ताकि उसके कार्य के क्षेत्र को बढ़ा सको। हमेशा अपनी उच्चतम चेतना से कार्य करो और पूर्ण रूप से, चाहे वह शारीरिक कार्य हो या भोजन-सम्बन्धी। तुम्हें हमेशा यह अनुभव करना चाहिये कि भगवान् की उपस्थिति केवल चैत्य केन्द्र में ही नहीं, सब तरफ़ है। यानी तुम्हें यह अनुभव होना चाहिये कि तुम्हारे चारों ओर वह चेतना है।

नारी के कार्य का एक और महत्त्वपूर्ण अंग है, भोजन बनाना। भारतीय परम्परा में गुरु शिष्यों को अपने सामने खिलाया करते थे। वे भोजन को छू देते थे, उस पर ध्यान केन्द्रित करते और फिर उन्हें प्रसाद के रूप में खिला देते थे। हर बार जब तुम खाना पकाओ तो इस भाँति ध्यान करो—"मैं भगवान् के लिए पका रही हूँ, यह भगवान् को मेरी भेंट है, भगवान् करे कि इस भोजन में दिव्य चेतना जागे।" पुजारी केवल मिनट-भर के लिए प्रसाद अर्पित करता है, तुम घण्टे-दो घण्टे तक भोजन तैयार करती हो। अगर तुम इतने समय के लिए इस चेतना में केन्द्रित रहो तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि जो कोई तुम्हारा भोजन ग्रहण करेगा वह अपनी चेतना में फ़र्क अनुभव करना शुरू करेगा—उसमें शुद्धि, बुद्धि, सहनशीलता, शान्ति और स्वास्थ्य का प्रवेश होगा। तुम्हें भोजन के बारे में सामान्य और वैज्ञानिक ज्ञान तो होना ही चाहिये, इसके अतिरिक्त यह

जानकारी भी होनी चाहिये, उच्चतर चेतना का आह्वान भी होना चाहिये जो तुम्हारे चारों ओर के लोगों की चेतना को बदलने का माध्यम—भोजन द्वारा बदलने का माध्यम—हो।

तीसरी महत्त्वपूर्ण चीज़ है, तुम्हारे घर की सजावट। तुम्हें इसका जीता-जागता नमूना होना चाहिये कि श्रीमाँ की बालिका कैसी हो। इसमें भी, हर चीज़ में सबसे अच्छा और एकमात्र उपाय है, तुम जो कुछ कर रही हो उस पर केन्द्रित रहो। मान लो कि तुम अपने घर को पुतवा रही हो, तुमको आश्चर्य होगा यह देख कर कि दीवारें तुम्हारे साथ बोलती हैं कि उन्हें कौन-सा रंग कहाँ चाहिये। तुम अपने बग़ीचे पर नज़र डालो। चुप होकर बग़ीचे पर, अपने आस-पास की ज़मीन पर, वहाँ के पेड़-पौधों पर और अन्ततः अपने अन्दर स्थित भगवान् पर केन्द्रित होकर उनसे पूछो कि मुझे क्या करना चाहिये। तुमको अनुभव होगा कि चारों ओर के पौधे तुमसे बोल रहे हैं और तुमको बता रहे हैं कि किसे कहाँ जाना चाहिये, कौन-सी कुरसी को कहाँ आना चाहिये।

एक और ज़रूरी बात है कि व्यर्थ की चीज़ों को अपने यहाँ न रखो, उन्हें घर से निकाल दो। व्यर्थ की चीज़ें कूड़े के समान होती हैं जो तुम्हारे लिए समस्याएँ पैदा कर देती हैं। उन्हें बेच डालो, किसी को दे दो, या जो मरज़ी हो करो, बेकार की चीज़ों को इकट्ठा न करो। अपने यहाँ सुन्दर चीज़ें, अच्छी चीज़ें रखो, तब तुम देखोगी कि सुन्दरता और सुख कैसे तुम्हारे चारों ओर बढ़ते हैं।

(क्रमशः)

—नवजातजी

शाश्वत ज्योति

(५)

हम आश्रम की वरिष्ठ साधिका चित्रा सेन—हमारी प्रिय चित्रा दी—की डायरी में अंकित श्रीमाँ की बातचीत बीच-बीच में दे रहे हैं। स्वयं चित्रा दी के शब्दों में सुनिये—

'इस वार्तालाप में माताजी की अधिकांश बातें मेरी डायरी से हैं। हम

उनके साथ जो भी बातचीत करते थे, उन्हें यथासम्भव ईमानदारी से लिख लेते थे। यह वार्तालाप माँ के द्वारा न तो देखा गया है और न ही सुधारा।'

अब मैं तुम लोगों को शारीरिक-शिक्षा के बारे में कुछ बताऊँगी।

अपने एक सन्देश में उन्होंने कहा कि शारीरिक शिक्षा का मतलब है, सचेतनता तथा नियन्त्रण, अनुशासन तथा अपने शरीर पर प्रभुत्व पाना। ये सभी चीज़ें उच्चतर तथा बेहतर जीवन के लिए आवश्यक हैं। वास्तव में हमारी शारीरिक शिक्षा का यही उद्देश्य है। अगर हम सचमुच देखें तो ६ से ९० साल तक के सभी, अलग-अलग दलों में कसरत करते हैं। सभी प्रायः रोज़ इसमें भाग लेते हैं। लड़कों तथा लड़कियों में कोई भेद नहीं किया जाता। तुम लोग सब कुछ कर सकते हो, क्योंकि ये कसरतें तुम्हारी भौतिक क्षमताओं के सभी विभिन्न पहलुओं का निर्माण करती हैं। माताजी हमें इन गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करती थीं। वे सभी दलों के कार्यक्रम देखती थीं, सभी प्रतियोगिताएँ देखती थीं, दौड़ की स्पर्धाओं में वे अन्तिम रेखा पर 'टेप' लेकर खड़ी रहतीं। उसके बाद वे हर एक के प्रदर्शन के बारे में बतलातीं। तो, स्वभावतः, हमारा उत्साह आज के बच्चों से कहीं ज़्यादा था। हमारे पास कोई ऐसी थीं जिनके पास जाकर हम कहना और बतलाना चाहते थे कि वे जो देखना चाहती थीं वह हमने कर दिखलाया।

वे हमारी जिम्नास्टिक्स की प्रतियोगिताओं में अंक देती थीं—मुझे याद है, यह एक या दो सालों तक चला। मैं तुमको प्रतियोगिता में उनके एक फ़ैसले का उदाहरण दूँगी। 'पैरेलल बार' पर हमें कुछ 'फ़िगर' करने थे। कम-से-कम मेरे लिए, वह काफ़ी मुश्किल था! आज के मानकों के अनुसार भी काफ़ी जटिल। प्रदर्शन के बाद जब मैं माँ से मिली, उन्होंने कहा, जिस तरह से तुम कर रही थीं, मेरे ख़याल से तुम पहली आ सकती थी। (मुझे दूसरा स्थान मिला था।) उसके बाद उन्होंने कुछ रुचिकर बात कही: "शारीरिक रूप से तुम्हारा प्रदर्शन ठीक था, लेकिन तुम्हारे अन्दर भय था। और इस वजह से मैंने कुछ अंक काट दिये।" समझ सकते हो कि अगर वे इस तरह अंक दें तो कितनी मुश्किल है! लेकिन वे एकदम सही थीं। 'बार्स' पर मुझे एक छोटी-सी शृंखला दर्शानी थी जिसमें मुझे

एक स्थान से दूसरे स्थान पर झूलना था और मुझमें भय था। क्या मैं झूल पाऊँगी या गिर पड़ूँगी? और वह उन्होंने मुझमें देख लिया।

मैं एक और दिलचस्प चीज़ सुनाऊँगी। एक वर्ष मुझे साँस की गम्भीर परेशानी हो गयी थी। पता नहीं क्यों? अचानक मैं साँस नहीं ले पाती। तो मेरी बहन ने श्रीमाँ के पास जाकर इस बात की सूचना दी। द्युमान् भाई मुझे देखने आये। "तुम्हें क्या हुआ, चित्रा?" मैंने कहा, "मुझे पता नहीं, द्युमान् भाई, मैं साँस नहीं ले पा रही हूँ।" मैं लेटी हुई थी। उस शाम को मैं माँ के पास गयी। वे भी आश्चर्य में पड़ गयीं, "तुम्हें यह क्यों होना चाहिये? क्या नसों में कुछ कमज़ोरी है?" बहरहाल, उसी के साथ, हमारी वार्षिक प्रतियोगिताओं के सत्र में मैंने सभी एथलेटिक्स चीज़ों में भाग लिया। हर स्पर्धा में मुझे तीसरा स्थान मिलता रहा। भले ही मैं पहले कहीं नहीं होती, लेकिन कुश्ती की हर स्पर्धा के अन्तिम मुक़ाबले में मुझे तीसरा ही स्थान मिलता। और तुम समझ सकते हो, जब तुम अपने मित्रों के बीच होते हो तो क्या होता है। वे मुझे चिढ़ाते रहते थे, "यह देखो, हमारा तीसरे दरजे का चैम्पियन आ गया!" एक बार ४०० मी. की दौड़ थी। मैं दौड़ी और फिर से मैंने तीसरा स्थान सुरक्षित कर लिया। अगले दिन मैं माँ के पास गयी। उन्होंने मुझसे कहा, "तुम बहुत अच्छी तरह दौड़ीं।" मैं एकदम से शरमा गयी, क्योंकि मैं तीसरी आयी थी। मैंने कहा, "नहीं माँ, मैंने सिर्फ़ तीसरा स्थान पाया है।" उन्होंने कहा, "यही तो हमें चाहिये। एक भाग में अचानक प्रतिभा का प्रदर्शन नहीं, बल्कि लगातार चौतरफ़ी प्रगति हो।" देखा, कैसे उन्होंने मुझे ख़ुश कर दिया तथा मेरी कठिनाइयों को बदल दिया।

मुझे आशा है कि तुम सब 'क्रोके' का खेल जानते होगे। जब माँ ने क्रीड़ांगण में आना शुरू किया तब हम उसे खेलते थे। वे हममें से कुछ के साथ खेलती थीं। एक बार उन्होंने मुझसे कहा था कि वे 'क्रोके' की बहुत अच्छी खिलाड़ी थीं। उनको कोई रोक नहीं सकता था। उन्होंने मुझसे कहा, "मैं गेंद को यूँ ही आसानी से ले लेती थी।" 'क्रोके' में तुम्हें दो लकड़ी की गेंदों और लकड़ी के हथौड़े के साथ खेलना होता है और एक गेंद से दूसरी गेंद को मारना होता है। फिर अपना हाथ दिखा कर, उन्होंने जोड़ा, "पहले से ही मेरे हाथ बहुत सचेतन थे।" मैंने उनकी ओर ज़रा परेशान होते हुए देखा। समझ रहे हो, उस समय मैं १५ या १६ साल की

थी, शायद पहली बार माँ ने मुझे बतलाया था कि भौतिक में चेतना हो सकती है! अब हम इसे जानते हैं। हम कोषाणुओं में विद्यमान चेतना के बारे में भी बातें करते हैं। लेकिन उस समय यह सब मेरे लिए आकाश से गिरने जैसा था। मैं उन्हें एकटक देखती रही। आख़िर मैं बुदबुदायी, "माँ, आप जो कह रही हैं वह एक कहानी की तरह है।" वे हँसीं। उन्होंने कहा, "हाँ, तुम्हें ऐसा लगता है क्योंकि इसके पहले तुम्हें किसी ने नहीं बतलाया कि यह सम्भव है।" उन्होंने मुझसे कहा था कि "सामान्यतः पियानोवादकों के हाथ बहुत सचेतन होते हैं। कभी-कभी, ऐसे हाथ व्यक्ति की मृत्यु के बाद भी नष्ट नहीं होते।" सम्भवतः वे सूक्ष्म भौतिक जगत् में बने रहते हैं। एक बार उन्होंने एक पिआनोवादक को पिआनो बजाते हुए देखा था और ऐसे ही हाथों की एक जोड़ी ने उस पिआनोवादक के हाथों में प्रवेश कर लिया और उस व्यक्ति ने अद्‌भुत संगीत का निर्माण किया, शायद अपनी सामान्य क्षमता के परे के संगीत का। यह बात यह समझाने के लिए है कि एक सचेतन हाथ क्या नहीं कर सकता।

(क्रमशः) अनु. वीणा

लादे-लादे नहीं फिरते

सच्चे संन्यासी का मापदण्ड क्या होता है जानना चाहेंगे?

पहाड़ी के उस पार नदी थी और नदी के दूसरे तट पर स्थित था देखने में छोटा-सा लेकिन गाँववालों की दृष्टि में भव्य और दुखियारों का आश्रयदाता वह सुन्दर, स्वच्छ देवी का मन्दिर। नदी में सारे दिन भक्तों से लदी नावों का आवागमन होता रहता और दिगन्त में गूँजा करतीं भक्तिगीतों और भजनों की सुमधुर तरंगें।

उस विशेष पर्व पर गाँव के कई प्रतिष्ठित भक्तगण सवेरे-सवेरे भूखे पेट मन्दिर में पूजा-अर्चना के लिए निकल पड़े। रोज की भाँति पहाड़ी पर बसने वाले उन साधु बाबा को प्रणाम कर, उन्हें फल-फूल का चढ़ावा चढ़ा, वे नदी के तट पर आकर नाविक की प्रतीक्षा करने लगे। देखते-न-देखते आकाश पर काले घनघोर बादलों ने धावा बोल दिया, हवा के तेज़ चाबुक चलने लगे और शीघ्र ही सभी भक्तों को बारिश की चुभती बौछार से बचने

के लिए पहाड़ी की ओट में इधर-उधर शरण लेनी पड़ी।

मौसम के बदलते तेवर देख मल्लाह सशंकित हो बोल उठा—"यह अचानक आकाश क्यों बरस पड़ा, मरुत क्यों क्रुद्ध हो उठा, वातावरण क्यों भयानक हो चला? नहीं, इसके पीछे ज़रूर कोई कारण है। भक्तगण, निश्चय ही आपने अपना उपवास तोड़ा है, आज के दिन देवी के मन्दिर में निर्जलाहार आने के व्रत का आपने पालन नहीं किया, तभी तो माँ प्रकृति ने यह रुद्र रूप धारण कर लिया। देवी के कोप के सामने मेरी यह छोटी-सी नौका क्या जल में क्षण-भर के लिए भी टिक पायेगी? नहीं, नहीं, मैं अपनी नौका पार नहीं ले जाऊँगा।"

मल्लाह की बात पर सभी भक्तजन एक साथ चीख-से पड़े—"असम्भव! असम्भव!! यह क्या कह रहे हो नाविक? हमने और उपवास तोड़ा? देवी को भोग लगाये बिना अन्न क्या, जल की एक बूँद भी कभी हमारे गले से नहीं उतरती।"

और कुछ तो विक्षुब्ध हो बरस पड़े मल्लाह पर—"इतना बड़ा आक्षेप!! लानत है तुम पर।"

लेकिन मल्लाह तो अपनी बात से टस-से-मस न हुआ। "मैं इस तूफ़ान में पानी में नाव उतार कर अपनी और आप लोगों की जान जोखिम में नहीं डाल सकता। हमारी नौका में कम-से-कम एक ऐसा व्यक्ति अवश्य होना चाहिये जिसने अपना व्रत न तोड़ा हो, सवेरे से कुछ न खाया हो।"

भक्तदल एक साथ फिर बोल उठा—"भाई, हममें से किसी ने अपना व्रत नहीं तोड़ा, हम सब उपासे हैं।"

"तब फिर आप लोगों के नाव में सवार होने से ठीक पहले अचानक आँधी-तूफ़ान का यह बवण्डर क्यों खड़ा हो गया?" मल्लाह ने प्रत्युत्तर में कहा।

क्षण-भर के लिए सभी निरुत्तर खड़े रह गये। फिर उनमें से एक बोला —"भाई, तुम हमारा विश्वास नहीं करते, लेकिन इतनी सवेरे-सवेरे ऐसा व्यक्ति ढूँढ़ कर कहाँ से लायें भला?"

"आप पहाड़ी पर रहने वाले उन साधु बाबा से साथ में चलने का निवेदन क्यों नहीं करते?" नाविक ने कहा।

"पहाड़ी के साधु बाबा?" सब भक्त आश्चर्य से आँखें फाड़े एक-दूसरे

को देखने लगे। वे सभी अच्छी तरह जानते थे कि उन साधु ने सवेरे से एक बार नहीं कई भक्तों के हाथ से प्रसाद ग्रहण कर उनके सामने खाया है, लेकिन यह बात उन्होंने नाविक को न बतायी, उन सबका हृदय तो देवी की स्तुति के लिए इतना अधीर हो रहा था कि वे हर हालत में नदी के दूसरे छोर पर जल्दी-से-जल्दी पहुँचना चाहते थे। मल्लाह की बात मान कर कुछ भक्तजनों ने पहाड़ी पर जाकर साधु से उनके संग नाव में चलने की प्रार्थना की।

संन्यासी ने आँखें खोलीं, मुस्कुराये, चुपचाप उठे और पहाड़ी उतरने लगे। इधर जिस तेज़ी से घनघोर घटाएँ आकाश में छा गयी थीं उससे अधिक वेग के साथ वे पल-भर में छितर गयीं, पानी यकायक थम गया और बिजली तो ऐसे अन्तर्हित हो गयी मानों कभी कड़की ही न थी। आसमान से बादलों के सरकते ही भक्तों के मुख से चिन्ता की रेखाएँ धुल गयीं। मल्लाह की निश्छल आँखों में सूरज का प्रकाश जगमगा उठा। संन्यासी के संग सभी भक्तों की चरण-धूलि का स्पर्श कर उसने अपनी नाव में सबको उचित आसन दिया और मन्द बयार के साथ-साथ नौका दूसरे तट की ओर अनायास बहने लगी।

नदी पार करते समय रोज़ की तरह भक्तों का दल आज कीर्तन न गा रहा था, सभी को एक-दूसरे की आँखों में समान प्रश्न की झाँकी दिखायी दे रही थी—"आख़िर इन महात्मा ने कौन-से जप-तप किये हैं जो देवी के मन्दिर में पूजा की विधि का पालन न करते हुए भी इनकी हमारे साथ चलने की स्वीकृति-मात्र से प्रकृति का समस्त कोप धूप में ओस की बूँद की तरह क्षण-भर में ग़ायब हो गया!! सभी व्रत-नियमों का पालन कर हम सवेरे से उपासे हैं जब कि इन्होंने सवेरे से कितनी ही बार खाकर व्रत तोड़ा..."

मल्लाह के भजन की गुनगुनाहट हवा में तैरने लगी। प्रकृति के साथ पूरी तरह से सामञ्जस्य में डोल रहा था नदी का जल, धरती के पेड़-पौधे और गगन के बादल, बस असामञ्जस्य और दुविधा में पड़ी थी भक्तों की टोली। टोली का प्रत्येक सदस्य यही सोच रहा था—"यह कैसी लीला है प्रभु की???"

तभी नाविक ने मुस्कुराकर पूछा—"आज आप लोग चुप्पी क्यों साधे

हैं? चलिये, एक सुन्दर-सी कहानी ही हो जाये," यह कह कर उसने कहानी शुरू की—

दो साधु किसी गाँव में जा रहे थे, रास्ते में नदी पड़ती थी, उस रोज़ नदी का पानी बहुत चढ़ आया था। अपनी-अपनी पोटली सिर पर बाँध जैसे ही वे पानी में उतरने लगे कि एक नवयुवती ने उनसे हाथ जोड़ कर विनय की—"भगवन्, मुझे भी उस पार जाना है, कृपया मेरी सहायता कीजिये।"

स्त्री की सहायता! नारी का स्पर्श!! दोनों क्षण-भर के लिए ठिठक गये, फिर एक ने कहा, "आओ बहन, मेरी पीठ पर आ जाओ, मैं तुम्हें पार उतार दूँगा।"

दूसरे साधु ने अपने मित्र को आँखें तरेर कर देखा, लेकिन मित्र ने तब तक युवती को पीठ पर लाद लिया। नदी पार कर युवती उन्हें अनेक धन्यवाद दे अपने रास्ते हो ली और साधु अपने।

दोनों चुपचाप चलते-चले जा रहे थे, लेकिन दूसरे साधु के अन्दर बवण्डर मचा था, आख़िर जब उससे न रहा गया तो वह अपने मित्र पर प्रायः बरस-सा पड़ा—"तुमने साधुजाति पर कलंक का टीका लगा दिया, स्त्री का स्पर्श किया, उसे अपनी पीठ पर लाद कर ले चले। सचमुच, धिक्कार है तुम पर, साधु का चोगा तुम्हें उतार फेंकना चाहिये।"

पहले साधु ने मुस्कुरा कर अपने मित्र की ओर शान्तिपूर्वक देख कर बस इतना ही कहा—"भाई, मैंने तो उस नवयौवना को नदी पार करा तुरन्त पीठ से उतार दिया था, लेकिन तुम तो अब तक उसे अपने मन की पीठ पर लादे-लादे घूम रहे हो।"

नाविक की कहानी सुन कर वातावरण में सन्नाटा बोलने लगा। भक्त एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे, अचानक अन्तःप्रकाश उनकी आँखों में चमक उठा और संन्यासी तथा मल्लाह का चरण-स्पर्श कर उनमें से एक बोल उठा—"नाविक, तुम धन्य हो, आज तुमने हमें अज्ञान की नदी के भी पार उतार दिया। हम हमेशा इसी भ्रम और अभिमान में चूर रहते थे कि हम भगवान् के पहुँचे हुए भक्त हैं, पूजा की सभी विधियों का अक्षरशः पालन करते हैं और कई बार पहाड़ी पर बसे इन सच्चे महात्मा को भी हेय समझते थे क्योंकि ये तो किसी भी व्रत का पालन न करते हैं। लेकिन आज समझ में आया कि उपासे रह कर भी हमारा मन सारे समय भोजन

में ही रमा रहता था कि कब व्रत टूटे और हम अपनी क्षुधा शान्त कर सकें। जब कि ये महात्मा जल में कमलपत्र की तरह अनासक्त रह कर, भोजन ग्रहण करके भी कभी उसमें रमे नहीं रहे। ये ही हैं सच्चे संन्यासी और भक्त जो हमारी तरह भोजन को मन में लादे-लादे नहीं फिरते!"

'अग्निशिखा', नवम्बर २०१३ —वन्दना

देवता भी भारतवासियों की महिमा गाते हुए कहते हैं—अहा! इन लोगों ने ऐसा क्या पुण्य किया है कि इन्होंने भारत में भगवान् की सेवा करने के लिए मनुष्य-जन्म पाया है। या स्वयं भगवान् ही इन पर प्रसन्न हो गये हैं। इस सौभाग्य के लिए तो हम भी तरसते हैं।

—श्रीमद्भागवत

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पॉण्डिचेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पॉण्डिचेरी ६०५००१, भारत

सम्पादक : वन्दना

स्वामी : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी-६०५००१

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर, झुंझुनू

श्रीअरविन्द दिव्य जीवन शिक्षा-केन्द्र, झुंझुनू (राजस्थान)

श्रीअरविन्द सोसायटी द्वारा स्थापित इस संस्था का मूल उद्देश्य श्रीअरविन्द व श्रीमाँ के मनुष्य जाति के लिए दिव्य जीवन के स्वप्न को साकार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह केन्द्र ऐसे श्रद्धालुओं के समूह के निर्माण की अभीप्सा रखता है जिनके जीवन का केवल यही उद्देश्य हो।

यह केन्द्र पूर्ण रूप से आवासीय है जिसमें छात्र-छात्राओं की शिक्षा, आवास व भोजन पूर्णतः निःशुल्क है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी है। शैक्षणिक सत्र हर वर्ष १५ अगस्त से प्रारम्भ होता है तथा केवल ६ से १२ वर्ष तक की आयु के बच्चों को ही प्रवेश दिया जाता है।

यह केन्द्र पूर्ण शिक्षा प्रदान करने तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए समस्त साधन प्रदान करने की अभीप्सा रखता है। जो अभिभावक अपने बच्चों के लिये सरकारी प्रमाण-पत्र, डिग्री व डिप्लोमा की आकांक्षा नहीं रखते अपितु उनकी सत्ता के केन्द्रीय सत्य के अनुरूप उनके पूर्ण व सर्वांगीण विकास की अभीप्सा रखते हैं और अपने बच्चों को इस शिक्षण-संस्था में प्रवेश दिलाने के इच्छुक हैं, वे पूरी सूचना के लिए निम्नलिखित पते पर सम्पर्क करें।

जो आध्यात्मिक पिपासु इस केन्द्र के कार्य में सहयोगी होना चाहते हैं तथा अपना जीवन इस कार्य में लगा कर साधनामय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, वे लोग अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

पंकज बगड़िया
श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर
मीरा अम्बिका भवन, खेतान मोहल्ला
पो०-झुंझुनू—३३३००१ (राजस्थान)
टेलीफोन—(०१५९२) २३५६१५
टेलीफैक्स—२३७४२८
e-mail: sadlecjjn@rediffmail.com
URL: WWW.sadlec.org

सच्चाई, निष्कपटता, साहस, अनुशासन, सहनशीलता, भागवत कार्य में पूर्ण श्रद्धा और 'भागवत कृपा' पर अविचल विश्वास। इस सबके साथ अविच्छिन्न, तीव्र अध्यवसायी अभीप्सा और अथाह धैर्य भी होना चाहिये।

श्रीमाँ

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,
जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)
www.aurosocietyrajasthan.org

Date of Publication: 1st June 2024
Rs. 30 (Monthly)
अग्निशिखा एवम् पुरोधा, वर्ष १, अंक ११, PONHIN00007 (RNI)
प्रकाशक स्थल: सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तं स्ट्रीट, पांडिचेरी ६०५००१